विश्वविद्यालय की परीक्षाओं का सर्वश्रेष्ठ मार्गदर्शक

नई परीक्षा प्रणाली पर आधारित

डी.कुमार्स® सीरीज

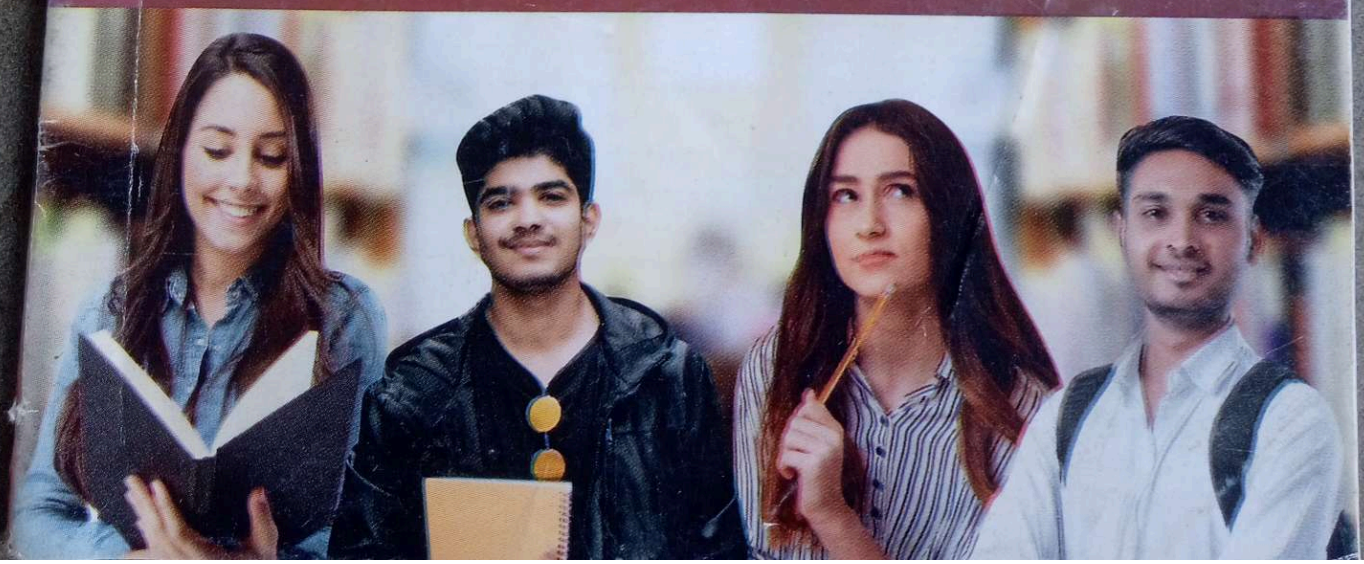
36 EDITION

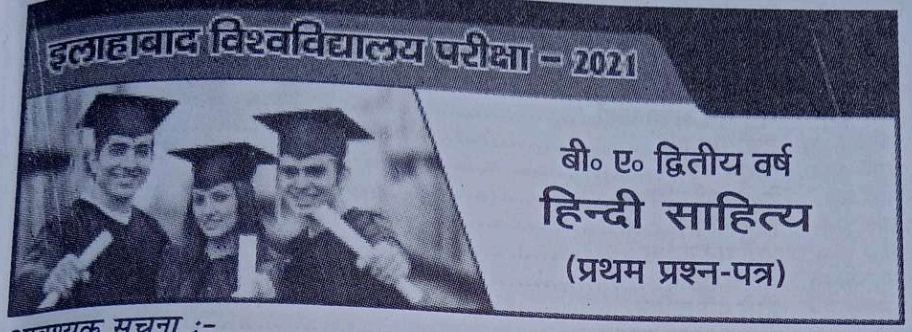
2021

बी० ए० द्वितीय वर्ष

हिन्दी

प्रथम प्रश्न पत्र





आवश्यक सूचना :-

यूजीसी के निर्देशानुसार सत्र-2020-2021 में लगभग सभी विषयों के पाठ्यक्रम में 30 प्रतिशत तक कटौती की गई है। छात्रों से अनुरोध है कृपया विश्वविद्यालय की अधिकृत वेबसाइट से पाठ्यक्रम अवश्य मिला लें। इस सत्र में विश्वविद्यालय के सभी विषयों की परीक्षाओं में सिर्फ चार प्रश्नों के उत्तर 12 पेज में लिखना होगा। प्रत्येक प्रश्न के उत्तर 3 पेज से अधिक नहीं होगें। लिखित परीक्षा की अवधि 2 घंटे की होगी। 30 मिनट उत्तर पुस्तिका को पीडीएफ में बदल कर अपलोड करने के लिए अलग से दिया जायेगा।

सम्भावित महत्त्वपूर्ण प्रश्न–2021

प्रश्न 1. निम्नलिखित पद्यांशों की सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए—

(1) विद्यापति

(i) देख-देख राधा ..... कोर अगोरि।
(ii) सखि हे .....मिलल एक।
(iii) भल हर भल हरि .....ओ सुलपानि।
(iv) माधव बहुत मिनति .....देह दिन बंधु।
(v) सुन रसिया..... हृदय हुलसिया।
(vi) खने-खन नयन.....चिन्हई न जान।
(vii) जुगल सैल सिम .....कन्त रे।
(viii) चाँद सार लए.....मिथिला भूपे।
(ix) चानन भेल.....चलुझट झारी।
(x) माधव हमार .....भैल वाम।

(2) कबीर

(i) झगरा एक ..... हरि का दास।
(ii) दुलहिन गावहु ..... भाग हमार।
(iii) हमरे गुरु दीन्हीं ..... वियाधि टरी।
(iv) हम न मरैं..... सुख सागर पावा।
(v) बाबा अब न बसउं..... भौजलि फेरा।
(vi) माया महा ठगिनी..... बिकानी।
(vii) लोगा तुम हौ .....जो होई।
(viii) जतन बिनु मिरगनि.....भली संभारे।
(ix) संतौ भाई .....जब चीना।
(x) तननां बुननां.....त्रिभुवन राई।
(xi) निरगुन राम ..... हरि की छांही।
कबीर सूता क्या..... तित तूं।
कबीर माया पापिनी.....बोरै चंचं।

(3) सूरदास

(i) ा सिंधु .....ग्राही री।
(ii) हे पभु .....जात टरौ।

(iii) कर पग गहि ....पग ठेलत
(iv) अविगति गति ....पद गावै
(v) अबके राखि ....कृपानिधान
(vi) अति मलीन ....दुलारी
(vii) मेरो मन अनत कहाँ ....कौन दुहावै
(viii) तजौ मन हरि ....दूजौ रंग
(ix) निर्गुन कौन ....मति नासी
(x) देखौ माई दधिसुत ....बलि जात
(xi) विनु गोपाल ....भई पुंजै
(xii) उधौं मन न भए ....नाहिं जगदीस
(xiii) मुरली तऊ ....डुलावति
(xiv) हमरे हरि हारिल ....मन चकरी
(xv) जसुदा मदन गुपाल ....फन छावै

(4) तुलसीदास

(i) सब कहँ सुखद ....अनुरागु
(ii) प्रभु पद पदुम ....सभा रघुराऊ
(iii) भरत बचन, ...कहिअ उपाऊ
(iv) सुन अति ....नामु तुम्हार
(v) बोरति ज्ञान ....विदेह सन
(vi) तापस बेष ....सुबानि सयानि
(vii) विहरत अवध ....सुत चारि
(viii) कुल करतूति ....खलक हे
(ix) कुस मुकुत ....मोहि बता
(x) पौढिये लालन ....चितु लाव
(xi) भरत बचन सुनि ....द्विजराव

(5) मलिक मुहम्मद जायसी

(i) सावन बरसि ....पांव न पंग
(i) भा भादौं ....पिय टेक
(iii) लाग कुवार ....होई सुदर
(iv) कातिक सरद ....सिर मेलि
(v) फागुन पवन ....जँह पाव
(vi) चैत बसंता होई ....पाव न छूटि
(vii) पूस जाड़ ....समेटहु पंख
(viii) भा बैसाख ....सीचै आई
(ix) जैठ जरै जग बहै ....पिय लागि
(x) तपै लाग ....आनि बसाउ
(xi) नागमती दुख ....छाँड़ि पास
(xii) अगहन देवस ....हम लाग
(xiii) कुहुकि-कुहुकि ....आवहि कंत
(xiv) चढ़ा असाढ़ ....सुख भूला सर्व

(6) मीराबाई

(i) माई साँवरे ....रसीली जाँची
(ii) बस्याँ म्हारे ....बछल गोपाल
(iii) म्हाँ गिरधर ....दिण राती
(iv) नहिं सुख ....छै पूरी
(v) अखयाँ तरशाँ ....री दासी
(vi) राणोजी ये ....अपणी जाणी

(7) बिहारीलाल

(i) तो पर वारो ....सुमान
(ii) जप माला ....राचै राम
(iii) मेरी भव बाधा ....होई

(iv) तजि तीरथ.....होतु प्रयागु।
(v) मकराकृत.....लसत निसान।
(vi) केसरि के .....को रूपु।
(vii) या अनुरागी .....उज्जलु होय।
(viii) कागद पर लिखत.....हिय की बात।
(ix) दीरघ साँस .....सु कबूलि।
(x) हौं हीं बौरी.....सीतकर-नाउं।
(xi) दृग उरझत.....यह रीति।
(xii) बतरस लालच.....नटि जाई।
(xiii) स्वारथु सुकृत .....न मारि।
(xiv) बढ़त-बढ़त .....कुम्हिलाय।
(xv) पत्रा ही तिथि.....ओप उजास।
(xvi) अंग-अंग.....गेह।

(8) **घनानन्द**

(i) पहिले घन आनँद .....मिठास ठगी।
(ii) पहिले अपनाय .....विष घोरियौ जू।
(iii) हीन भये .....जानि ही जानै।
(iv) रस सागर नागर .....सदाई रहौं।
(v) रूप निधान.....मोह के तारे।
(vi) रावरे रूप .....हाथनि हारियै।
(vii) झलकै अति.....धर च्वै।
(viii) लाजनि लपेटी.....मुरि जानि मैं।
(ix) रैना दिन .....की फांसी।
(x) अति सूधो.....छटाँक नहीं।

प्रश्न 2. "विद्यापति मुख्यतः यौवन और शृंगार के कवि हैं।" उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

अथवा

विद्यापति के शृंगार चित्रण की विशेषताएँ लिखिए। **अथवा**

"विद्यापति सौन्दर्य एवं प्रेम के कवि हैं।"इस कथन की समीक्षात्मक विवेचना कीजिए।

अथवा

"मैथिल कोकिल कवि विद्यापति राधाकृष्ण के विशुद्ध शृंगार चित्रण की दृष्टि से अद्वितीय हैं।"इस कथन को उपयुक्त प्रमाणों द्वारा पुष्ट कीजिए। **अथवा**

"विद्यापति मूलतः शृंगार के कवि हैं।"इस कथन के आलोक में विद्यापति के काव्य की केन्द्रीय भावनाओं (चेतना) का निरूपण कीजिए। **अथवा**

"विद्यापति के प्रेम चरित्र में आध्यात्मिकता का कोई आग्रह नहीं है।" सोदाहरण विवेचना कीजिए।

प्रश्न 3. हिन्दी गीति काव्य परम्परा (मुक्तक काव्य परम्परा)में विद्यापति का स्थान निर्धारित कीजिए तथा उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। **अथवा**

भावपक्ष तथा कलापक्ष की दृष्टि से विद्यापति के काव्य का मूल्यांकन कीजिए।....

अथवा

विद्यापति की काव्य भाषा (काव्यगत विशेषताओं/काव्य सौष्ठव)का वर्णन कीजिए। .

अथवा

विद्यापति के काव्य का कलात्मक वैशिष्ट्य निर्धारित कीजिए। **अथवा**

गीतिकाव्य परम्परा में विद्यापति की कविता (काव्य) का क्या महत्त्व है? सोदाहरण उत्तर दीजिए।

प्रश्न 4. 'विद्यापति भक्त हैं अथवा शृंगारी कवि।' सोदाहरण स्पष्ट कीजिए। **अथवा**

सिद्ध कीजिए विद्यापति के काव्य में भक्ति और शृंगार दोनों प्रवृत्तियों के साथ-साथ विद्यमान है। **अथवा**

"विद्यापति शृंगार प्रधान भावुक भक्ति कवि हैं।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में उनकी भक्ति भावना का वर्णन कीजिए। **अथवा**

"विद्यापति के काव्य में भक्ति एवं शृंगार दोनों पदों का वर्णन मिलता है।"इस कथन के आलोक में उनकी काव्य प्रतिभा का मूल्यांकन कीजिए।

प्रश्न 5. कबीर की निर्गुण भक्ति साधना पर एक समीक्षात्मक निबन्ध लिखिए। अथवा
कबीर के निर्गुण भक्ति का निरूपण कीजिए। अथवा
निर्गुण भक्त के रूप में, कबीर की भक्ति भावना का मूल्यांकन कीजिए।

प्रश्न 6. कबीर की काव्यभाषा पर एक समीक्षात्मक निबन्ध लिखिए। अथवा
"कबीर वाणी के डिक्टेटर थे।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। अथवा
कबीर की भाषा शैली की विवेचना कीजिए। अथवा
'कबीर के काव्य में अनुभूति, अभिव्यक्त तथा रहस्यवादी भावनाओं का समिश्रण
है।' इस कथन की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए। अथवा
"कबीर में जो काव्यत्त्व है वह एक प्रकार से फोकट का माल है।" इस कथन की
समीक्षा कीजिए। अथवा
कबीर की भाषा और उसके सामर्थ्य को सोदाहरण स्पष्ट (व्याख्यापित) कीजिए।

प्रश्न 7. 'अपनी बंद आखों से सूर ने वात्सल्य का कोना-कोना झांक लिया' इस कथन के
सन्दर्भ में सूर के वात्सल्य वर्णन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए। अथवा
"सूरदास वात्सल्य रस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।" प्रमाण सहित इस कथन की पुष्टि
कीजिए। अथवा
"सूर के काव्य में बाल वर्णन की स्वाभाविक एवं कलात्मक अभिव्यंजना हुई है।"
इस कथन की पुष्टि कीजिए। अथवा
'सूरदास का वात्सल्य वर्णन अद्वितीय है।' इस कथन के आधार पर सूरदास के
वात्सल्य वर्णन की विशेषताएँ बताइये।

प्रश्न 8. सूर की भक्ति सम्बन्धी स्वरूप का वर्णन पठित काव्य अंशों के आधार पर कीजिए। अथवा
"सूरदास की भक्ति प्रेमाभक्ति है, जिसका आधार श्रीकृष्ण का सगुण स्वरूप और
सौन्दर्य है" इस कथन के आलोक में सूर की भक्ति चेतना पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 9. सूर के विरह वर्णन पर विवेचनात्मक निबन्ध लिखिए। अथवा
'सूर का वियोग वर्णन हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है।' इस कथन की तर्क सहित
विवेचना कीजिए। अथवा
सूर का विरह वर्णन (वियोग वर्णन) अत्यन्त ही मर्मस्पर्शी बन पड़ा है। इस पर एक
समीक्षात्मक लेख लिखिए।

प्रश्न 10. "सूरदास के काव्य में युवावस्था के उल्लास और प्रेम का उन्मुक्त वर्णन है।" इस
कथन की आलोचना कीजिए। अथवा
सूर संग्रह के आधार पर सूरदास के शृंगार वर्णन की विशेषताओं की विवेचना कीजिए। अथवा
सूर का प्रेम वर्णन मध्यकालीन सामंती समाज की जड़ता के विरुद्ध स्त्री सम्मान के
पक्ष में विद्रोह की चेतना से अनुप्राणित है।' इस कथन के आधार पर सूर की शृंगार
चेतना की विवेचना कीजिए।

प्रश्न 11. राम काव्य परम्परा के अन्तर्गत 'रामचरित मानस' के महत्त्व को रेखांकित कीजिए। अथवा
सगुण राम काव्य परम्परा के रचनाओं के अन्तर्गत (आधार पर) तुलसी के 'रामचरित
मानस' की सार्थकता एवं काव्यगत विशेषताओं का निरूपण कीजिए।

प्रश्न 12. तुलसी की भक्ति भावना का सोदाहरण परिचय दीजिए। अथवा
तुलसी की भक्ति पद्धति के स्वरूप का वर्णन कीजिए साथ ही उनकी भक्ति में लोक
कल्याणकारी चेतना की अभिव्यक्ति पर प्रकाश डालिए। अथवा
सिद्ध कीजिए भक्ति कवि तुलसी ने ज्ञान मार्ग की तुलना में भक्ति मार्ग को उत्कृष्ट सिद्ध
किया है। अथवा
रामभक्त कवि के रूप में तुलसी की भक्ति का मूल्यांकन कीजिए।

प्रश्न 13. पद्मावत के नागमती वियोग खण्ड के आधार पर जायसी के विरह वर्णन की विशेषता
बताइये। अथवा
"पद्मावत महाकाव्य के अन्तर्गत नागमती के विरह वर्णन हिन्दी साहित्य की अनुपम
निधि है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। अथवा

'नागमती
आलोक
कीजिए
प्रश्न 14. पद्मावत
सर्वश्रेष्ठ
जायसी
जायसी
प्रश्न 15. पद्मावत
जायसी
कीजिए
जायसी
"पद्मा
करने
प्रश्न 16. गीति
मीरा
कि उ
परिल
मीरा
प्रश्न 17. "मीरा
है।"
"मीरा
सोदा
प्रश्न 18. बिहारी
के क
'बिहा
उनके
बिहार
भाव
डालि
बिहार
इस
बिहा
को
बिहा
प्रश्न 19. क्या
सिद्ध
बिहा
उत्तर
"बिह
है उ
'जिस
मुक्त
प्रश्न 20 घना
घना
है।"
घना
सोद

'नागमती का विरह संपूर्ण भक्ति कालीन कविता में अद्वितीय है।' इस कथन के आलोक में जायसी द्वारा प्रस्तुत नागमती विरह वर्णन की विशेषताओं को निरूपित कीजिए।

प्रश्न 14. पद्मावत महाकाव्य के आधार पर यह सिद्ध कीजिए जायसी हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ रहस्यवाद भावुक कवि है। **अथवा**
जायसी के रहस्यवाद का वर्णन कीजिए। **अथवा**
जायसी के रहस्यवाद की विशेषताओं का निरूपण कीजिए।

प्रश्न 15. पद्मावत के काव्य सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए। **अथवा**
जायसी के काव्य का काव्य सौन्दर्य भावपक्ष (अनुभूति पक्ष) के आधार पर निरूपण कीजिए। **अथवा**
जायसी के काव्य की काव्यगत एवं भाषागत विशेषताओं का विवेचन कीजिए। **अथवा**
"पद्मावत के संयोग और वियोग शृंगार की सजीवता में किसी भी सहृदय को विभोर करने की पर्याप्त क्षमता है।" इस कथन की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 16. गीति काव्य परम्परा में मीरा के स्थान का निरूपण कीजिए। **अथवा**
मीरा के गीति काव्य परम्परा की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए यह स्पष्ट कीजिए कि उनके गीतों में विद्यापति, सूर, कबीर एवं तुलसी के गीतों से भिन्न विशेषता परिलक्षित होती है। **अथवा**
मीरा को हिन्दी गीति काव्य परम्परा में क्यों श्रेष्ठ माना जाता है–सकारण उत्तर दीजिए।

प्रश्न 17. "मीरा की वाणी में ऊपर से विद्रोह है, लेकिन भीतर से प्रेम की स्रोत वाहिनी प्रवाहित है।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में मीरा के काव्य प्रकृति का वर्णन कीजिए। **अथवा**
"मीरा के काव्य में प्रकृति के विविध रूपों का वर्णन मिलता है।" उक्त कथन को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 18. बिहारी रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि हैं– इस कथन का आशय स्पष्ट करते हुए बिहारी के काव्य का मूल्यांकन कीजिए। **अथवा**
'बिहारी रीति काल के सबसे अधिक लोकप्रिय कवि हैं।' इस कथन के आलोक में उनके काव्यगत विशेषताओं का मूल्यांकन कीजिए। **अथवा**
बिहारी के काव्य सौष्ठव पर एक विवेचनात्मक निबन्ध लिखिए। **अथवा**
भाव पक्ष एवं कला पक्ष की दृष्टि से बिहारी के काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। **अथवा**
बिहारी के काव्य में संयोग एवं वियोग (विप्रलम्भ) शृंगार का सुन्दर प्रयोग हुआ है। इस कथन की तर्क सहित विवेचना कीजिए। **अथवा**
बिहारी की काव्यगत विशेषताओं का वर्णन करते हुए उनकी लोकप्रियता के कारणों को इंगित कीजिए। **अथवा**
बिहारी रीतिकाल के श्रेष्ठ शृंगारिक कवि हैं, इस आशय को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 19. क्या आप कविवर बिहारी को एक सफल मुक्तककार मानते हैं। उपयुक्त प्रमाणों द्वारा सिद्ध कीजिए। **अथवा**
बिहारी ने अपने काव्य में गागर में सागर भरने की उक्ति चरितार्थ किया है। तर्क सहित उत्तर दीजिए। **अथवा**
"बिहारी मुक्तक काव्य की रचना में सिद्धहस्त हैं। मुक्तक कविताओं में जो गुण अपेक्षित है उनके दोहे में चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया है।" इस कथन की पुष्टि कीजिए। **अथवा**
'जिस कवि में कल्पना की समाहार शक्ति और भषायी समासिकता हो, वही सफल मुक्तककार होगा।' इस कथन की विवेचना कीजिए।

प्रश्न 20 घनानन्द के काव्य सौन्दर्य एवं कलात्मक वैशिष्ट्य का वर्णन कीजिए। **अथवा**
घनानन्द ने काव्य वस्तु की भाँति ही शिल्प के क्षेत्र में भी अपनी एक अलग पहचान बनाई है।" इस कथन के आलोक में घनानन्द के काव्य-शिल्प की विवेचना कीजिए। **अथवा**
घनानन्द के कथ्य एवं काव्य के आधार पर उनके विरह वर्णन एवं प्रेम व्यंजना की सोदाहरण समीक्षा कीजिए। **अथवा**

'प्रेम और पीर की रचनात्मक अभिव्यक्ति ही घनानन्द की कविता है' इस कथन की समीक्षात्मक विवचना कीजिए।

अथवा

"नई परिकल्पना और उक्ति-सौन्दर्य का एक घना रिस्ता घनानन्द के काव्य में परिलक्षित होता है।" उक्त कथन के आधार पर घनानन्द के काव्य शिल्प पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 21. निम्नलिखित में **किन्हीं तीन** पर टिप्पणी लिखिए-

(क) जायसी का विरह वर्णन (नागमती का विरह वर्णन)
(ख) जायसी का रहस्यवाद
(ग) जायसी (पद्मावत) की काव्यभाषा एवं प्रकृति चित्रण
(घ) कबीर की निर्गुण भक्ति (कबीर की भक्ति भावना)
(ङ) विद्यापति की श्रृंगार चेतना (सौन्दर्य दृष्टि)
(च) विद्यापति की भाषा एवं उनका हिन्दी साहित्य में स्थान
(छ) मीरा की विद्रोही चेतना
(ज) मीरा की भक्ति का स्वरूप
(झ) तुलसी के काव्य में लोक मंगल
(ञ) सूर की भक्ति भावना (भक्ति का स्वरूप)
(ट) तुलसी की समन्वय चेतना
(ठ) सूर का श्रृंगार वर्णन (दृष्टि)
(ड) सूर का वात्सल्य वर्णन
(ढ) कबीर की भाषा
(ण) कबीर की सामाजिक चेतना एवं रहस्यवादी भावना
(त) जायसी की सौन्दर्य चेतना
(थ) घनानन्द की विरह अनुभूति एवं प्रेम की पीर (प्रेम वर्णन/प्रेम भावना)
(द) जायसी का सूफी दर्शन
(ध) बिहारी का काव्य प्रतिभा
(न) तुलसी के राम

प्रश्न 1. निम्नलिखित पद्यांशों की सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए—

(1) विद्यापति

अवतरण (i) **देख देख राधा रूप अपार।**
अपरुब के बिहि आनि मिलाओल खिति तल लावनि सार।।
अंगहि अंग अनंग मुरछायत, हेरए पड़ए अधीर।
मनमथ कोटि मथन करु जे जन, से हेरि महि मधि गीर।।
कत कत लखिमी चरण तल नेओछए रंगिनि हेरि विभोरि।
करु अभिलाख मनहिं पदपंकज, अहोनिसि कोर अगोरि।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत पद्य अंश 'विद्यापति संग्रह' से उद्धृत है जिसके रचनाकार मैथिल कोकिल कवि विद्यापति जी है।

प्रसंग—प्रस्तुत पद में कविवर विद्यापति राधा के अपार रूप की वन्दना करते हुए कहते हैं-

व्याख्या—श्री राधिका जी के अपूर्व रूप सौन्दर्य का जरा अवलोकन तो कीजिए। पता नहीं ब्रह्मा ने किस प्रकार से इस धरती पर इस प्रकार के सौन्दर्य के सार की सृष्टि की है। श्री राधिका जी के अंग-प्रत्यंग की शोभा को निहार कर सौन्दर्य के देवता कामदेव का मन भी अस्थिर हो उठता है, वह चंचल चित्त जान पड़ता है। जो पुरुष (श्री कृष्ण) करोड़ कामदेव के सौन्दर्य को भी मात देने वाले हैं वही श्री कृष्ण भी राधा के अनुपम सौन्दर्य का अवलोकन अर्थात् देख कर पछाड़ खाने लगते हैं। उसे देखकर न जाने कितनी ही लक्ष्मी चरणों पर बलिहारी जाती हैं और न जाने कितनी सुन्दरियां मुर्क्षित हो जाती हैं। मनमें यह इच्छा उत्पन्न हो जाती है कि इन चरण रूपी कमलों को अपनी गोंद में रखकर रात दिन अर्थात् चौबिसों प्रहर उसकी रक्षा किया करें।

विशेष- (1) श्री राधा के रूप सौन्दर्य का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया गया है।

अलंकार- अपरूब के बिहि में गम्योत्प्रेक्षा तथा अंगहि अंग अनंग में वृत्यानुप्रास अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

अवतरण (ii) **सखि हे कि पूछसि अनुभव मोय।**
सोई पिरीति अनुराग बखानइते, तिले तिले नूतन होय।।
जनम अवधि हम रूप निहारल, नयन न तिरपित भेल
सोइ मधुर बोल भुवनहि सुनल, श्रुति पथे परसन गेल।।
कत मधु यामिनि रमसे गमाओल, न बुझल कैसन केल।
लाख लाख युग हिये हिये राखल, तैओ हिय जुड़न न गेल।।
यत यत रसिक जन रसे अनुगमन, अनुभव काहु न पेख।
विद्यापति कह प्राण जुड़ाइत, लाखे न मिलल एक ।।

सन्दर्भ-पूर्ववत्।

प्रसंग- प्रस्तुत पद में विद्यापति ने नायिका के माध्यम से उसके प्रेम एवं अनुराग की अनुभूति का बखान किया है जो उसका कृष्ण के प्रति है। प्रेम की यह अनुभूति उसकी एक सखी नायिका से जानना चाहती है।

व्याख्या-विद्यापति की नायिका अपने सखी को सम्बोधित करते हुए कहती है-हे सखी! तू मेरे अनुभव के विषय में क्या पूछती है अर्थात् मैं तुम्हें किस प्रकार अपना अनुभव बताऊँ। यदि उस प्रेम अथवा अनुराग का बखान (वर्णन) किया जाय तो प्रत्येक पल वह नया ही नया दृष्टिगत होता है। श्री कृष्ण के प्रति मेरे प्रेम का वर्णन करना इतना सरल नहीं है। इसका कारण वर्णन तो स्थिर वस्तुओं का किया जाता है। वह आगे कहती है मैंने अपनी पूरी उम्र कृष्ण के रूप माधुरी को देखा लेकिन मेरी आँखे अभी तक तृप्त नहीं हुईं। उनके मीठी आवाज को सदा मैं अपने कानों से सुन रही हूँ फिर भी जब मैं वह मधुर वचन पुनः सुनती हूँ तो ऐसा लगता है जैसे उन्हें कभी सुना ही नहीं हो, श्रीकृष्ण अर्थात् मुरली माधव के रूप सौन्दर्य और वाणी की मिठास में जो नयापन है वह मुझे सदा अतृप्त ही बनाये रखता है। कितने ही वसन्त ऋतु की सुहावनी मादक रातें श्री कृष्ण के साथ प्रेम क्रीड़ा होती ही रहती है? अर्थात् उनसे मिलन की उतकण्ठा आज भी कम नहीं हुई है। मैने युग-युगांतर तक अपने अन्तःकरण अर्थात् हृदय को उसके अन्तःकरण से लगाये रखा है किन्तु मेरे अन्तःकरण की प्रेम ज्वाला बुझती ही नहीं। नायिका आगे कहती अनेक प्रेमानुरागी अर्थात् रसिक व्यक्ति प्रेम रूपी रस का पान करते हैं किन्तु कोई भी रसिक उस प्रेम का वास्तविक अनुभव अभी तक नहीं कर सका है।

कवि विद्यापति आगे कहते हैं-लाखों लोगों में ऐसा कोई नहीं मिला जिसका मन प्रेम को प्राप्त कर तृप्त का अनुभव करता हो क्योंकि ऐसा इसलिए है प्रेम की पूर्ण अनुभूति हो ही नहीं सकती किसी से प्रेम जितना अधिक करो उसमें नित नयी नूतनता उतनी ही अधिक दिखायी देगी अर्थात् प्रेम का वर्णन करना कोई सरल कार्य नहीं है।

विशेष- (1) प्रस्तुत पंक्तियों में अतृप्त प्रेम का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया गया है।
(2) विद्यापति ने प्रेम की अनूभूति को अर्निवचनीय माना है।
(3) उपर्युक्त पदों में श्रृंगार रस का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग हुआ है।

अवतरण (iii) **भल हर भल हरि भल तुअ कला, खन पित बसन खनहिं बघछला।**
खन पंचानन खन भुज चारि, खन संकर खन देव मुरारि।
खन गोकुल भए चराइअ गाय, खन भिखि माँगिए डमरु बजाय।
खन गोविन्द भए लिअ महादान, खनहि भसम करु काँख बो कान।
एक शरीर लेल दुई वास, खन बैकुंठ खनहि कैलास।
भनइ विद्यापति बिपरित बानि, ओ नारायण ओ सूलपानि।

सन्दर्भ-पूर्ववत्।

प्रसंग- कवि का यह कथन हर और हरि के एकात्म से सम्बन्धित है।

व्याख्या- हे हर! तुम अच्छे हो, हे हरि! तुम भी अच्छे हो और तुम्हारी कला भी अच्छी है (दोनों में समन्वय रूप देखता हुआ कवि कहता है)क्षण में तुम पीताम्बर वस्त्र धारण करने वाले बन जाते हो और क्षण में बाघ छाला को शरीर पर धारण कर लेते हो। क्षण में पाँच मुख वाले शिव बन जाते हो और क्षण में चतुर्भुज विष्णु बन जाते हो। कहने का भाव यह है कि क्षण में शंकर और क्षण में विष्णु रूप धारण कर लेते हो। क्षण में तुम गोकुल में गायें चराने लग जाते हो और क्षण-भर में डमरू बजाकर भिक्षा माँगने लगते हो। क्षण में गोविन्द रूप धारण कर

गोपियों से महादान की याचना करते हो और क्षण में बगलों और कानों में भभूति (भष्म) मल लगते हो। कैसे कहा जाय कि तुम्हारे एक ही शरीर में दो स्थानों का निवास है। क्षण में वैकुंठ और क्षण में कैलाश पर अपना डेरा जमा लेते हो। कवि विरोधी बातों का कथन कर रहे हैं अ वह एक नारायण है तो एक शूलपाणि (महादेव)।

अवतरण- (iv)

माधव बहुत मिनति कर तोय।
दए तुलसी तिल देह समर्पिनु दया जनि छाड़बि मोय।।
गनइत दोसर गुन लस न पाओब जा तुहुँ करबि विचार।
तुहु जगत जगनाथ कहाओसि जग बाहिर नइ छार।।
किए मानुस पसु पखि भए जनमिए अथवा कीट पतंग।
करम विपाक गतागत पुनु पुनु मति रह तुअ परसंग।।
भनइ विद्यापति अतिसय कातर तरइत इह भवसिंधु।
तुअ पद-पल्लव करि अवलंबन तिल एक देह दिन-बंधु।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद में विद्यापति जी कहते हैं हे मुरलीधर ! कृष्ण आप से मेरी विन प्रार्थना है इस भावुक भक्त को आप कभी भुलाइयेगा नहीं। मैं आपके चरण कमलों में सदै लीन रहना चाहता हूँ।

व्याख्या-भक्त अथवा शृंगारी कवि भावुक होकर भगवान् मुरली मनोहर से विनती करते हैं माधव! अर्थात् भगवान् कृष्ण मैं अत्यन्त श्रद्धा एवं स्नेहपूर्वक आप से बार-बार विनम्र प्रार्थना करता हूँ मैंने महत्त्वपूर्ण पूजन सामग्री के अन्तर्गत तुलसी पत्र और तिल देकर आप के ह प्रदान किया गया यह पंचतत्त्व के समिश्रण से बना शरीर तुम्हें ही समर्पण कर दिया है। अतः आ आप मेरी लाज रखना और मुझे कभी अपने से दूर मत करना। जब मैं आप के गुणों को जोड़कर पर विचार करता हूँ तो आप से सदृश गुण वाला कोई मुझे दूसरा नहीं दिखाई देता। तुम्हीं इस ज के ईश अर्थात् स्वामी हो और संसार भी तुम्हीं हो। इस संपूर्ण सृष्टि अर्थात् भूमण्डल में तुमसे ह कुछ भी नहीं है। कवि का भाव यह है कि मैंने संसार में जो पाप किये हैं ये सब इस संसार के अन्त माया के वशीभूत होकर किए हैं क्योंकि यह संसार ही मायामय है। इसलिए मैं क्षमा योग्य हूँ। माधव ! मेरा उद्धार कीजिएगा यदि मैं अपने कर्म फल से आवागमन के चक्र में पड़कर मनुष्य, प अथवा कीट या पतंगे की योनि में आऊँ, तब भी मेरी यही विनम्र प्रर्थना है कि मेरी बुद्धि आपकी च अर्थात् हरि चर्चा में लगी रहे अर्थात् मैं अपके गुणों में अपना मन लगाये रहूँ। मैथिल कवि विद्याप कहते हैं कि इस भवसागररूपी संसार को पार करने के लिए हे माधव (गोपाल)! मैंने तु चरण-पल्लवों को पकड़ा है। हे दीन-बन्धु दीनानाथ ! एकपल के लिए अपना वह पद-पल्लव म दो। अर्थात् मुझे अपने चरण-कमलों में तिल बराबर स्थान दे दो तो मेरा उद्धार हो जावेगा। क अत्यन्त दीन होकर माधव से प्रार्थना करता है कि मैं अब अपनी अन्तिम अवस्था में हूँ, मैं प्रार्थ करता हूँ कि मेरा उद्धार करो। मेरी मनोकामना है कि मेरा मन आपके चरण-कमलों में रत रहे तो मे उद्धार निश्चय ही हो जावेगा। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

विशेष- (1) भावुक भक्ति का सुन्दर वर्णन है।
(2) मैथिल हिन्दी का काव्य में सुन्दर प्रयोग हुआ है।
(3) काव्य पद में दास्य भावना का सुन्दर वर्णन है।

अवतरण (v)

सुन रसिया, अब न बजाऊ विपिन बंसिया।
बार-बार चरनार बिन्द गहि सदा रहब बन दसिया।।
कि छलहुँ कि होएब के जाने बृथा होएत कुल हँसिया।
अनुभव ऐसन मदन-भुजंगम हृदय मोर गेल डसिया।।
नंद नन्दन तुअ सरन न त्यागब, बरु जग होए दुरजसिया।।
विद्यापति कह सुनु बनितामनि, तोर मुख जीतल ससिया।
धन धन्य तोर भाग गोआरिनि, हरिभजु हृदय हुलसिया।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग—कृष्ण बंशी बजा रहे हैं। राधा उनकी ध्वनि पर मोहित हैं और कृष्ण से विनय करती हैं कि तुम मुरली मत बजाया करो, मैं सदैव तुम्हारी दासी बनकर रहूँगी।

व्याख्या—हे रसिक कृष्ण! मेरी बात सुनो, तुम अब कुंज में वंशी मत बजाया करो, मैं बार-बार तुम्हारे चरण-कमलों को पकड़कर प्रतिज्ञा करती हूँ कि सदैव तुम्हारी, दासी बनी

रहूँगी। मैं पहले क्या थी और अब क्या हो गयी, यह बात भविष्य ही जानता है कि जो तुम मुझे इस प्रकार बार-बार बुलाते हो, इससे व्यर्थ ही मेरे कुल की हँसी होती है। मुझे कुछ ऐसा अनुभव होता है कि कामदेवरूपी सर्प ने मुझे डस लिया है। हे कृष्ण! मैं तुम्हारी शरण कभी नहीं छोड़ूँगी, चाहे सारे जग में अपयश ही क्यों न फैल जाय।

विद्यापति कहते हैं कि स्त्रियों में शिरोमणि सुन तुम्हारे मुख ने चन्द्रमा को विजित कर लिया है। हे ग्वालिनी! तू बड़ी भाग्यवान है। तू प्रसन्न होकर हृदय में श्रीकृष्ण का स्मरण कर। वे तेरी सब इच्छाएँ पूर्ण कर देंगे।

अवतरण (vi)

खने खन नयन कोन अनुसरई। खने खन बसन धूलि तनु भरई।
खने खन दसन छटा छट हास। खने खन अधर आगे गहु वास।
चउँकि चलए खने खन तलु मंद। मनमथ पाठ पहिल अनुबन्ध।
हिरदय मुकुल हेरि हेरी थोर। खने आँचर दय खने होइ भोर।
बाला सैसव ताहन भेंट। लखए न पारिअ जेठ-कनेठ।
विद्यापति कह सुनु बर कान। तसनिम सैसव चिन्हइ न जान।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियाँ मैथिल कोकिल विद्यापति द्वारा विरचित 'विद्यापति पदावली' से उद्धृत की गई हैं। विद्यापति उच्चकोटि के शृंगारी कवि हैं। वे अपरूप के कवि हैं सौन्दर्य के चितेरे हैं तथा संगीत के अमर गायक हैं। शैशव और यौवन का प्रभाव नायिका पर छाया हुआ है। इस अवस्था में उसकी प्रत्येक चेष्टाओं का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण कवि ने किया है।

व्याख्या—क्षण-क्षण में उसकी आँखें कटाक्ष करने लगती हैं। कभी शैशव सुलभ असावधानी के कारण इसका वस्त्र अस्त व्यस्त होकर नीचे धूल में गिर पड़ता है। पुनः वह उसको उठा अपने वक्षस्थल पर धारण कर लेती है जिसके कारण उसका शरीर धूल धुसरित हो जाता है, कभी वह दाँतों की सुषमा से हास विकीर्ण करती है और कभी अधरों के आगे वस्त्र को लाती है। कभी चौंक कर बच्चों की तरह चलती है और कभी युवती नायिका के समान मंद गति से चलने लगती है। यह सब कामदेव के प्रथम पाठ की भूमिका है अर्थात् कामदेव ने उसे यौवन को देना प्रारम्भ कर दिया है। वह नायिका कुचों पर क्षण-क्षण दृष्टि डालकर कभी तो इन्हें आँचल से आवृत्त कर देती है और कभी असावधान हो जाती है जिसके कारण इसे कुचों को ढकने का ध्यान ही नहीं रहता। नायिका ने शैशव और यौवन से भेंट की है। ये दोनों अवस्थाओं के मिलन का समय है। उसकी इस अवस्था से यह ज्ञात नहीं होता कि उन दोनों में कौन बड़ा और कौन छोटा है दूसरे शब्दों में सन्धि काव्य में दोनों समान कक्षा के दिखाई पड़ते हैं। भाव यह है कि दोनों ही परस्पर इतने घुल मिल गये हैं कि उन्हें पृथक्-पृथक् करके नहीं देखा जा सकता।

विशेष—(1) वयः सन्धिकाल के भावों का सुन्दर अंकन है।
(2) चित्रोपमता दर्शनीय है।

अवतरण (vii)

जुगुल सैल सिम, हिमकर देखल, एक कमल-दुहु जोति रे।
फुललि मधुरि फुल, सिंदुर लोटाएल, पांति बसइलि गज मोति रे।
आज देखल जति, के पतिआएत, अपुरुब बिहि निरमान रे।
बिपरित कवक, कदलि तर शोभित, थल पंकज के रूप रे।
तथहु मनोहर, बाजन बाजए, जनि जागे मनसिज भूप रे।
भनइ विद्यापति, पुरुब पुन तह, ऐसनि भजए रसमन्त रे।
बुझल सकल रस, नृप सिबसिंघ, लखिमा देइ कर कन्त रे।

संदर्भ-प्रस्तुत पंक्तियाँ मैथिल कोकिल विद्यापति द्वारा विरचित 'विद्यापति पदावली' से उद्धृत हैं।

प्रसंग-कवि नायिका के अपूर्व सौन्दर्य का भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन करता है।

व्याख्या-मैंने दो पर्वतों की सीमा में चन्द्रमा के दर्शन किये अर्थात् दोनों कुचों के सन्धि स्थल के ऊपर मुख को उदित होते हुए देखा। उसी स्थान पर एक कमलरूपी मुख में से प्रकाश बिन्दु (नेत्र) भी दिखाई दिये। वहीं एक मधुरी का फूल विकसित है अर्थात् मंगल बिन्दु शोभायमान है जिस पर सिन्दूर लोटता है और उसके नीचे गज-मुक्ताओं की पंक्ति शोभायमान हो रही थी, अर्थात् गजमुक्ताओं के समान दाँतों की पंक्ति सुशोभित थी। आज मैंने उसे जाते हुए देखा और विश्वास उत्पन्न हुआ कि ब्रह्मा ने उसका निर्माण अपूर्व ढंग से किया है। उसका रूप अद्वितीय था, अनुपम था, अवर्णनीय था। सोने के केले के स्तम्भ के नीचे स्थल पर विकसित होने वाला

कमल शोभित हो रहा था, अर्थात् स्वर्णकदली के सदृश सुन्दर, सुडौल जंघाओं के नीचे चरण रूपी दो कमल विकसित हो रहे थे। उन चरणों में मनोहर घुँघरू बज रहे थे। यह दृश्य ऐसा प्रतीत होता था, मानों घुँघरू का यह मधुर निनाद कामदेव को जागृत कर रहा हो। विद्यापति कहते हैं कि ऐसी रसवन्ती नायिका को वही प्राप्त कर सकता है जिसने पूर्व जन्म में अनेक पुण्य किये हों। इस सम्पूर्ण रस को लखिमा देई के पति शिवसिंह ही जानते हैं।

अवतरण- (viii) चाँद सार लए मुख घटना करु लोचन चकित चकोरे ।
अमिय धोय आँचर धनि पोछलि दह दिसि भेल उँजेरे ।
जुग-जुग के बिहि बूढ़ निरस उर कामिनी कोने गढ़ली।
रूप सरूप मोयँ कहइत असंभव लोचन लागी रहली।
गुरु नितम्ब भरे चलए न पारए माँझ खानि खीनि निमाई।
भांगि जाइत मनसिज धरि राखलि त्रिबलि लता अरुझाई।
भनइ विद्यापति अद्भुत कौतुक ई सब बचन सरुपे।
रूपनरायन ई रस जानधि सिवसिंध मिथिला भूपे।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियाँ मैथिल कोकिल विद्यापति द्वारा रचित विद्यापति पदावली से उद्धृत की गई हैं। भाद्र मास की वर्षा राधा की बिरह-व्यथा को उद्दीप्त कर देती है। वह बादलों की गरज, बिजली की चमक और मूसलाधार वर्षा से संतृप्त होकर सखी से कहती है-

व्याख्या—दूती राधा के सौन्दर्य की प्रशंसा करके कृष्ण के मन में प्रेम उत्पन्न करना चाहती है। वह कहती है चन्द्रमा का सार लेकर नायिका के मुख की रचना की गयी है। उसके नेत्र चकित चकोर के समान हैं। इसका मुख इतना स्वच्छ है कि मानो उसे अमृत से धोकर पोछा गया हो। इसलिए इसका मुख दसों दिशाओं में कान्ति फैला रहा है। वह ब्रह्मा युगों से सृष्टि की रचना करते-करते बूढ़ा हो गया है और नीरस भी है। अतः इस रूपसी की यह सुन्दर रचना उसके द्वारा नहीं की गई होगी। पता नहीं इस कामिनी की रचना किसने की। इस सुन्दर रूप का वर्णन करना मेरे लिए असम्भव है इसका अद्वितीय रूप अभी भी आँखों में समाया हुआ है। इसके नितम्ब भारी हैं, इसलिए उसकी चाल में मन्दी है। उसका मध्य भाग क्षीण है अर्थात् वह क्षीण कटिवाली है। पतली कमर टूट न जाये इसलिए कामदेव ने सिबली रूपी लता से उसे लपेट दिया है। विद्यापति कहते हैं कि यह सब कौतुक मात्र लगता है, किन्तु है वास्तविक। मिथिला नरेश राजा शिवसिंह जो नारायण रूप हैं, इस रस को जानते हैं।

अवतरण- (ix) माधव हमार रहल दुरदेस। केओ न कहे सखि कुसल सनेस।।
जुग जुग जीवथु वसथु लाख कोस। हमर अभल हुनक दोस।।
हमर करम भेल बिहि विपरीत। तेजलन्हि माधव पुरुविल प्रीति।।
हृदयक वेदन बान समान। आनक दुःख आन नाहि जान।।
भनहि विद्यापति कवि जयराम। कि करत नह दैव भेल वाम।।

संदर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-राधा विरहावस्था में कहती हैं।

व्याख्या-हमारे कृष्ण ने विदेश जाकर किसी अन्य से प्रेम कर लिया है। कोई भी उनका कुशल समाचार मुझे नहीं सुनाता। वे मुझसे चाहे कितनी ही दूर क्यों न रहें लेकिन मेरी तो हर समय यही कामना रहती है कि युग-युग तक जीवित रहें। मैं जो विरह का दुःख पा रही हूँ वह मेरे भाग्य के कारण है। इसमें प्रियतम का कोई दोष नहीं है।

मेरे अपने ही कर्मों से विधाता मेरे विपरीत हो गया है और कृष्ण ने पहली प्रीति को भुला दिया है। मेरे हृदय की वेदना बाण के समान दुःख दे रही है अर्थात् जिस प्रकार बाण का आघात भयंकर वेदना पहुँचाता है उसी प्रकार प्रियतम के द्वारा की गई यह उपेक्षा मुझे व्यथित कर रही है। एक के दुःख को दूसरा नहीं जानता? अथवा जिसने दुःख का कभी अनुभव नहीं किया वह दूसरे के दुःख को क्या जान सकता?

जाके पैर न फटे बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई', कवि जयराम विद्यापति कहते हैं कि देव ने फल की परिणति ही विपरीत लिखी है इसके कारण सुख किस प्रकार मिल सकता है।

विशेष-1.कवि ने राधा के प्रेम की उदारता और पवित्रता का परिचय दिया है। सूर ने 'चिर जीवो कान्ह हमारे' कहकर इसी तथ्य का उद्घाटन किया है। विद्यापति और सूर दोनों इस अवस्था में समान हैं।

2.विषाद, उदारता और दैन्य की सुन्दर व्यंजना है, अतः भावसबलता है।
3.पुनरुक्ति प्रकाश, लुप्तोपमा, अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

अवतरण- (x) चानन भेल बिसम सर रे, भूसन भेल भारी।
सपनहुँ नहिं हरि आएल रे, गोकुल गिरधारी।।
एकसर ठाड़ कदम-तर रे, पथ हेरथि मुरारी।
हरि बिनु देह दगध भेल रे, झामरु भेल सारी।।
जाह जाह तोहें मधुपुर जाहे,चन्द्रवदनि नहिं जीउति रे।
बध लागत कहे।।
भनहिं विद्यापति तन मन दे, सुन गुनमति नारी।
आज आओत हरि गोकुल रे, पथ चलुझट झारी।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत पंक्तियाँ मैथिल कोकिल विद्यापति द्वारा विरचित विद्यापति पदावली से उद्धृत की गई हैं।

प्रसंग-रास केश्वरी राधा अपनी वियोग दशा का वर्णन अपनी अन्तरंग सखी से कर रही है। सखी उनको आशान्वित करती है कि उनके प्रियतम रसिकेश्वर श्री कृष्ण शीघ्र ही वापस आयेंगे, इसलिए वह उनका स्वागत करने के लिए तैयार रहें।

व्याख्या-राधा कह रही हैं कि कृष्ण के वियोग में शीतलता प्रदान करने वाला चन्दन दुस्सह बाण की तरह कष्टदायक लग रहा है तथा आभूषण भार के समान प्रतीत हो रहे हैं। जब से गिरधारी कृष्ण मथुरा गये हैं तब से स्वप्न में भी लौटकर नहीं आये। मैं अकेले कदम्ब वृक्ष के नीचे खड़ी होकर मुरारी श्रीकृष्ण का मार्ग देख रही हूँ। हरि श्रीकृष्ण के अभाव में शरीर जला जा रहा है तथा साड़ी मलिन हो गयी है। हे उद्धव ! तुम अतिशीघ्र मथुरा लौट जाओ, क्योंकि कृष्ण के बिना वह चन्द्रमुखी जीवित नहीं रहेगी। अतः तुम्हें उसके वध का पाप लगेगा। विद्यापति कहते है कि सखी राधा से कहती है कि हे राधा तुम तो सम्पूर्ण गुणों से युक्त हो। मैं अपने तन-मन को साक्षी देकर कहती हूँ कि आज श्रीकृष्ण अवश्य आयेंगे इसलिए उनके स्वागत हेतु शीघ्र ही मार्ग में चलो।

(2) कबीर

अवतरण (i) झगरा एक निबेरहु राम।
जे तुम्ह अपने मन सौं काम।।
ब्रह्मबड़ा कि जिन रे उपाया। बेद बड़ा कि जहाँ ते आया।
यह मन बड़ा कि जेहि मन मानै। राम बड़ा कि रामहिं जानै।
कहें कबीर कहौं भया उदास। तीरथ बड़ा कि हरि का दास।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियाँ भक्त शिरोमणि एवं मानवतावादी विचारक महात्मा कबीर द्वारा रचित 'कबीर के पद' से उद्धृत की गई हैं। सन्त कबीर ब्रह्म विधानों की अपेक्षा आन्तरिक अनुभूति को अधिक श्रेष्ठ मानते हैं। वे इसी बात को यहाँ वाक् चातुर्य द्वारा अभिव्यक्त करते हैं।

व्याख्या—हे राम एक विवाद है, झगड़ा है उसको तुम सुलझा दो या उसका निपटारा कर दो अगर तुन्हें अपने इस सेवक से कुछ भी सम्बन्ध या सोराकार है। विवाद इस बात का है कि ब्रह्मा बड़ा है या वह जिसने ब्रह्म को भी पैदा किया? वेद बड़ा है अथवा वह जहाँ से वेद आया। मन बड़ा है कि या वह जिससे मन स्वीकार कर ले अथवा मन जिसमें अनुरक्त हो जावे। राम बड़ा है वह भक्त जो राम को जानता है? सन्त कबीर कहते हैं कि यह सोच-सोचकर मैं बड़ा खिन्न हूँ कि तीर्थ बड़ा होता है अथवा हरि का सेवक या भक्त जो तीर्थ का निर्माण करता।

अवतरण (ii) दुलहिन गावहुं मंगलचार।
हम घरि आए र जा राम भरतार ।।
तन रत करि मैं मन रति करिहौं पांचउ तत्त बराती।
राम देव मोरै पाहुनै आए मैं जोबन मैंमाती।।
सरीर सरोबर बेदी करिहौं ब्रह्मा बेद उचारा।
राम देव संगि भांवरि लेंहहौं धंनि धंनि भाग हमार ।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत पद्यांश संत कबीर द्वारा विरचित 'कबीर के पद' शीर्षक से अवतीर्ण है।

प्रसंग-प्रस्तुत पद में कबीर स्वयं को वधू तथा राम को वर रूप में कल्पित कर विवाह का रूपक रचते हैं।

व्याख्या-संत कबीर परमात्मा को पुरुष तथा जीवात्माओं को स्त्री रूप मानते हैं। इस पद में जीव ब्रह्म के सम्बन्ध को पति पत्नी के प्रतीक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। जीवात्मा रूपी प्रियतमा ब्रह्म रूपी प्रियतम से मिलने हेतु गुणों को जब प्राप्त कर लेती है तब प्रभु उसका वरण करने के लिए तैयार होते हैं। साधना की इसी उच्च भाव भूमि को संत कबीर विवाह के रूपक द्वारा अभिव्यक्त करते हैं।

हे सौभाग्यवती वधुओं, तुम विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले मांगलिक गीत गाओं (क्योंकि विवाह का शुभ अवसर उपस्थित है।)। राजा राम (दूल्हे बनकर) पति रूप में मेरे घर पर पधारे हैं उनके साथ बराती के रूप में पाँचों तत्व आये हुए हैं। इस अवसर पर दुल्हन की मानसिक स्थिति का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं कि मैंने अपना शरीर और मन दोनों उनमें अनुरक्त कर दिया है। मेरे प्रभु राम मेरे घर पाहुन (अतिथि) के रूप में पधारे हैं क्योंकि प्रभु से मिलन का समय आ गया है और अब वे मेरा वरण करेंगें। मैं अपने प्रियतम के स्वागत में शरीर रूपी सरोवर के तट पर वैदी बनाऊँगी; पुरोहित के रूप में ब्रह्मा वेद मंत्रों का उच्चारण करेंगे। यह मेरा परम सौभाग्य है कि मैं अपने प्रभु राम के साथ भांवरे लूँगी। इस विलक्षण विवाह को देखने के लिए तैंतीस करोड़ देवता और अठ्ठासी हजार ऋषि आये हैं। संत कबीर कहते है कि एक अविनाशी पुरुष मुझसे विवाह करके मुझे ले जा रहे हैं।

विशेष-(1) राग-गौरी , (2) अलंकार-पूरे पद में सांगरूपक, व्यतिरेक।

अवतरण- (iii) **हमारे गुरु दीन्हीं अजब जरी।**

कहा कहौं कुछ कहत न आवै अंमित रसन भरी।।
याही तैं मोहि प्यारी लागी लैकैं गुपुत धरी।
पांचौं नाग पचीसौं नागिनि सूंघत तुरत मरी।।
डांइनि एक सकल जग खायौ सो भी देखि डरी।
कहै कबीर भया घट निरमल सकल वियाधि टरी ।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत पद्य अवतरण संतमार्गी काव्यधारा के निर्गुणोपासक कबीर विरचित 'पद' शीर्षक से अवतीर्ण किया गया है।

प्रसंग-प्रस्तुत पद में संत कबीर ने गुरु की महिमा का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है अर्थात् गुरु द्वारा उन्हें ज्ञानरूपी जो जड़ी अर्थात् दीक्षा प्राप्त हुई है उससे वह किसी को भी अपने वश में कर सकते हैं।

व्याख्या-सन्त कबीर जी कहते हैं कि हमारे गुरु ने हमें एक आश्चर्यकारी उपदेश दिया है। इस उपदेश का यह प्रभाव है कि इससे सारे मायात्मक विकार नष्ट हो जाते हैं किन्तु इसके बारे में कुछ भी कहा नहीं जा सकता। इतना अवश्य है कि यह उपदेश अमृत रस से भरा हुआ है। अमृत रस से भरा होने के कारण ही यह मुझे बहुत प्रिय है और मैंने अपने हृदय की गहराई में इसे यत्नपूर्वक छुपाकर रखा है। इस पंचतत्त्व के शरीर में समस्त इन्द्रियाँ और उसमें समस्त कारण प्रभाव इस गुरु के उपदेश की जड़ी को सूँघते ही नष्ट हो जाते हैं। इस संसार को समूल नष्ट करने पर अमादा डाइनिरूपा माया भी यहाँ आते हुए डरती है। कबीरदास जी कहते हैं कि गुरु के उपदेश का ही यह प्रभाव है कि हमारा शरीर निर्मल हो गया और सारे सांसारिक ताप, रोग, दोष से मुक्ति मिल गई।

विशेष-1.गुरु के उपदेश का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।
2.माया सम्पूर्ण जगत के विनाश का कारण है।
3.गुरु के ज्ञान के उपदेश से माया से मुक्ति मिल जाती है।
4.गुरु का ज्ञान शरीररूपी घट का निर्मलकारी है।
5.प्रतीक पद्धति और रूपक अलंकार है।

अवतरण- (iv) **हम न मरैं मरिहै संसारा।**
हमकौ मिला जिआवन हारा।।
साकत मरहि संत जन जीवहि। भरि-भरि राम रसायन पीवहिं।।
हरि मरिहैं तो हमहूँ मरिहैं। हरि न मरैं हम काहे को मरिहैं।।
कहै कबीर मन मनहि मिला। अमर भया सुख सागर पावा।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत पद्यांश संतमार्गी काव्य धारा के निर्गुणोपासक कवि सन्त कबीर विरचित (पद) शीर्षक से अवतीर्ण किया गया है।

प्रसंग-प्रस्तुत पद
निश्चिंत है। उसे अपनी
हो गया है।

व्याख्या-इस पद
जिससे मनुष्य अमरता
हम अर्थात् भक्त नहीं म
उपासना करने वाले श
करके जीवित रहते हैं।
मरण का कोई प्रश्न ह
कहते हैं कि भक्त का
असीम ब्रह्मानंद का अ

विशेष-(1) रा
काया क्षीण नहीं होती
(2) राग-गौरी
(3) अलंकार-

अवतरण- (v)

संदर्भ-प्रस्तुत प
प्रसंग- प्रस्तुत
व्याख्या- अरे
करूँगा क्योंकि का
है। यह शरीर गाँव
नासिका, कान, जि
जमा-पावना अर्था
अर्थात् खोटी करन
यमदूत, दरबारी अ
खेत का भली प्रक
भविष्य में पुनः इ

अवतरण- (vi)

सन्दर्भ-पूर्व
प्रसंग-कबी
हरिभक्त इसे दबा
व्याख्या-ठ
यह प्रत्यक्ष दिखती
में कर लेती है इ

प्रसंग-प्रस्तुत पद में कबीर प्रभु प्राप्ति कर लेने वाले उस भक्त का वर्णन कर रहे हैं जो परम निश्चिंत है। उसे अपनी भी कोई चिन्ता नहीं है; क्योंकि उसको अपने परम प्रभु का आश्रय प्राप्त हो गया है।

व्याख्या-इस पद में बताया गया है कि नाशवान संसार में भक्ति ही वह संजीवनी है, जिससे मनुष्य अमरता प्राप्त कर सकता है। कबीर कहते हैं कि संसार में सब मर जायेंगे किन्तु हम अर्थात् भक्त नहीं मरेंगे; क्योंकि उसे अमरत्व प्रदान करने वाले प्रभु मिले गये हैं। शक्ति की उपासना करने वाले शाक्त भी मर जाते हैं, किन्तु प्रभु के (वैष्णव) भक्त राम-रसायन का पान करके जीवित रहते हैं। भक्ति के द्वारा भक्त और प्रभु का सायुज्य हो जाता है और चूँकि प्रभु के मरण का कोई प्रश्न ही नहीं है, इसलिए भक्त के मरने का प्रश्न भी व्यर्थ हो जाता है। कबीर कहते हैं कि भक्त का आत्मतत्व परमात्म तत्व से मिल जाता है। इस प्रकार वह अमर हो कर असीम ब्रह्मानंद का अनुभव करता है।

विशेष-(1) रामरसांइन वैद्यक के अनुसार 'रसायन' वह औषध है जिसके प्रयोग से काया क्षीण नहीं होती है और राम रसायन वह औषधि है जिससे अमरतत्व की प्राप्ति होती है।

(2) राग-गौरी

(3) अलंकार-वक्रोक्ति

अवतरण- (v)

बाबा अब न बसउं यहि गांउं।
घरी घरी का लेखा मांगै काइथ चेतू नांउं।।
देही गांवां जिउधर महतौ बसहिं पंच किरसानां।
नैनूं नकटू स्रवनूं रसनूं इंद्री कह न मांनां।।
धरमराइ जब लेखा मांगै बाकी निकसी भारी।
पंच क्रिसनवां भागि गये लै बांध्यौ जिउ दरबारी।।
कहै कबीर सुनहु रे संतहु खेतहिं करहु निबेरा।
अब की बेर बखासि बंदे कौं बहुरि न भौजलि फेरा।।

संदर्भ-प्रस्तुत पद्यावतरण सन्त कबीर द्वारा विरचित 'कबीर के पद' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों में सन्त कबीर संसार को छोड़ने की इच्छा व्यक्त करते हैं।

व्याख्या- अरे बाबा! अब इस गाँव में नहीं रहूँगा अर्थात् अब इस शरीर को धारण नहीं करूँगा क्योंकि काया में स्थित चेतना अथवा चित्रगुप्त कायस्थ पलपल का हिसाब माँगता है। यह शरीर गाँव है, प्राणधारी आत्मा उसका मुखिया है और पंचेन्द्रियाँ किसान हैं। नेत्र, नासिका, कान, जिह्वा आदि इन्द्रियाँ कहना नहीं मानती। धर्मराज जब हिसाब माँगेंगे तब जमा-पावना अर्थात् पुण्य कार्य के खाते में तो कुछ नहीं निकलेगा। बकाया के खाते में अर्थात् खोटी करनी बहुत मिलेगी। पाँचों किसान अर्थात् पंच कर्मेन्द्रियाँ तो भाग जायेंगी, यमदूत, दरबारी और जीव ये ही बाँधेंगे। सन्त कबीर कहते हैं कि हे सन्तों! सुनो, इस (देह) खेत का भली प्रकार निपटारा कर लो। हे भगवान् अब की बार इस बन्दे को क्षमा कर दो भविष्य में पुनः इस संसार के फन्दे में नहीं फँसेगा।

अवतरण- (vi)

माया महा ठगिनि हम जानीं।
तिरगुन फांसि लिए कर डोलै बोलै मधुरी बानी।।
केसव कै कंवला होइ बैठी सिव कै भवन भवानी।
पंडा कै मूरति होइ बैठी तीरथ हूं मैं पानीं।।
जोगी कै जोगिनि होइ बैठी राजा कै घरि रानीं।
काहू कै हीरा होइ बैठी काहू कै कोड़ी कानीं।।
भागतां कै भगतिनि होइ बैठी तुरकां कै तुरकानीं।
दास कबीर साहेब का बंदा जाकै हाथि बिकानी।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-कबीर माया का व्यापक प्रमाण और प्रसार का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हरिभक्त इसे दबाकर वश में कर लेते हैं।

व्याख्या-ठग विद्या का प्रसार करने वाली माया को हमने भली प्रकार पहचान लिया है, यह प्रत्यक्ष दिखती नहीं है, कि अदृश्य का फन्दा हाथ में लेकर और मधुर बोलकर सभी को वश में कर लेती है इसका प्रसार और प्रभाव सर्वत्र है। यहा विष्णु के यहाँ लक्ष्मी, शिव के भवन में

पार्वती, पण्डा के घर में देवता की मूर्ति और तीर्थों में पानी के रूप में विराजमान है। यही ठगिनी भेष योगिनी और राजा के घर रानी के रूप में बैठी है। किसी के यहाँ जोगिन है, तो किसी के यहाँ कानी-कौड़ी बनकर घोर दरिद्रता का प्रसार करती है। यही माया तुर्कों के यहाँ तुरकानी और भक्तों के यहाँ भक्ति बनकर बैठी है, परन्तु यह कबीरदास अपने साहब का बन्दा है, अतः उसके हाथ बिकी हुई है अर्थात् उसको प्रभावित नहीं कर पाती।

अवतरण- (vii)

लोगा तुम हौ मति के भोरा।
जउ कासी तनु तजहिं कबीरा तौ रामहिं कौन निहोरा।।
जो जन भाउ भगति कछु जानै ताकौ अचरजु काहो।
जैसें जल जलहीं ढुरि मिलिऔ त्यौं ढुरि मिल्यौ जुलाहो।।
कहै कबीर सुनहु रे, लोई भरमि न भूलहू कोई।
क्या कासी क्या महगर ऊखर ह्वदै रांम जौ होई।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद में सन्त कबीर ने ईश्वर के प्रति निष्ठा व्यक्त करते हुए यह कहा है मोक्ष प्राप्ति के लिए काशी नहीं वरन् ईश्वर का सानिध्य महत्त्वपूर्ण है। यदि तुम पर परमात्मा की कृपा होगी तो कहीं भी मृत्यु होने पर इस संसार के आवागमन से मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

व्याख्या-हे लोग ! तुम लोग बुद्धि से बड़े भोले और अबोध हो। जैसा कि हिन्दुओं में विश्वास प्रचलित है। उस विश्वास के अनुसार यदि कबीर काशी में शरीर त्यागे और उसे मुक्ति मिल गयी तो फिर इसमें राम का क्या एहसान रहा। जो भक्तप्रेम या अनुरागात्मिक। भक्ति के विषय में कुछ भी जानता है उसके लिये नाम मय हो जाना कौन सी आश्चर्य की बात है। जैसे जल बह कर जल में ही मिल जाता है उसी प्रकार कबीर जुलाहा भी ढुलक कर राम में मिल जावेगा। अर्थात् अंश अपने मूल अंशी परमात्मा में विलीन हो जावेगा। सन्त कबीर कहते हैं कि ऐ लोइ अथवा ऐ लोगों! सुनों अपने अन्दर किसी भी प्रकार का भ्रम मत पालो कि काशी उपजाऊ है यहाँ मुक्ति उपजती है और मगहर ऊसर है वहाँ मुक्ति नहीं उपजती अगर हृदय में राम है, हृदय में राम के प्रति निष्ठा और आस्था है तो अन्तिम समय में वह चाहे मुक्ति प्रदाता काशी में प्राण त्यागे चाहे ऊसर मगहर में उसके लिये दोनों ही समान है।

अवतरण- (viii)

जतन बिनु मिरगनि खेत उजारे।
टारे टरत नहीं निस बासुरि बिडरत नांहि बिडारे ।। टेक ।।
अपनैं अपनैं रस के लोभी करतब न्यारे न्यारे।
अति अभिमान बदत नहिं काहू बहुत लोग पचि हारे ।।
बुधि मेरी किरखी गुर मेरौ बिझुका अक्खिर दोइ रखवारे।
कहै कबीर अब चरन न देइहौं बेरियां भली संभारे ।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत पद्यावतरण संत कबीर जी द्वारा विरचित 'कबीर के पद' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग- प्रस्तुत पद में ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् हुई अनुभव को सन्त कबीर ने उजागर किया है।

व्याख्या- रक्षा के अभाव में मृगों और जंगली पशुओं ने खेत को चर लिया अर्थात् साधन के अभाव में पंच विकारों काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद ने इस शरीर को अन्दर ही अन्दर उजाड़ दिया। रात-दिन उन्हें हटाया जाता है लेकिन वे भयभीत होकर तितर-बितर नहीं होते। सब अपने-अपने विषयों के लोभ में पड़े हुए हैं और उनके गुण तथा कारनामें भी अलग-अलग हैं। बहुत लोग हैरान हो गये लेकिन अत्यधिक अभिमान के कारण ये किसी की परवाह नहीं करते। बुद्धि मेरी कृषि और उसकी रक्षा करने वाले राम के दो अक्षर वाले भगवान 'बिझका' है। कबीरदास कहते हैं कि उपयुक्त समय पर मैंने अपने को सँभाल लिया है अब खेती को चरने नहीं दूँगा अर्थात् बुद्धि को भ्रष्ट नहीं होने दूँगा।

विशेष- (1) शरीर को खेती के रूप में चित्रित किया।
(2) मनुष्य के पाँच विकारों की तुलना जंगली पशु एवं मृग से की गई है।

अवतरण (ix)

संतौ भाई आई ग्यान की आँधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उड़ांनी माया रहे न बाँधी रे।।
दुचिते की दोइ थूंनि गिरानी मोह बलेंडा टूटा।
त्रिसनां छानि परी घर ऊपर दुरमति भांडा फूटा।।
आंधी पाछै जो जल बरसै तिहि तेरा जन भीनां।
कहैं कबीर मनि भया प्रगासा उदै भानु जब चीन्हा।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद्य में संत कबीर ने ज्ञानोदय होने पर भक्त के भीतर क्या परिवर्तन होते हैं, उन्हें आँधी के रूपक के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

व्याख्या-इस पद में छप्पर, आँधी और वर्षा के रूपक के माध्यम से स्पष्ट किया गया है कि अज्ञान का आवरण हटने पर ही ज्ञान का प्रकाश होता है, भक्ति का उदय होता है। यहाँ ज्ञान को आँधी आने के समान बताया गया है। कबीर कहते हैं संतों भाई, ज्ञान की आँधी आ गई है। जिस प्रकार आँधी आने पर छप्पर पूरी तरह से छिन्न-भिन्न हो कर उड़ जाता है, उसी प्रकार ज्ञानोदय से भ्रम की टाटी पूरी तरह उड़ कर समाप्त हो जाती हैं। छप्पर को बाँधने के जो खम्भें लगे थे, वे भी आँधी के झोंके से गिर कर नष्ट हो गये। ये दो खम्भे चित्त की दो अवस्थाओं विषयाशक्ति तथा ब्रह्मचार के थे अथवा दुविधा के थे, वे ध्वस्त हो गये। तृष्णा रूपी छप्पर का आधार मोह रूपी बल्ली भी टूट गयी, परिणामतः वह छप्प पृथ्वी पर गिर पड़ा। छप्पर के पृथ्वी पर गिरने से, तृष्णा के समाप्त होने से दुर्बुद्धि रूपी पात्र आर्थात् बर्तन भी टूट कर नष्ट हो गये। साधारणतः आँधी के बाद वर्षा होती है। ज्ञान की आँधी आने के पश्चात् प्रभु की प्रेमाभक्ति रूपी जल की वर्षा हुई। इस जल से प्रभु का भक्त रसस्नात् हो उठा। कबीर कहते हैं कि ज्ञान रूपी सूर्य के उदित होने से उसके भीतर दिव्य प्रकाश फैल गया और उसने अपने स्वरूप का साक्षात्कार कर लिया।

विशेष—1. आँधी का रूपक बड़ा सजीव है।

2. ग्रामीण शब्दावली का प्रयोग कर कबीर सर्वसाधारण तक अपना सन्देश भेजना चाहते हैं।

अवतरण- (x)

ननां बुनना तज्यौ कबीर।
रांम नांम लिखि लियौ सरीर ।। टेक ।।
मुसि मुसि रोवै कबीर की माई ।
ए बारिक कैसे जीवहिं खुदाई ।।
जब लागि तागा बाहौं बेही ।
तब लगि बिसरै राम सनेही ।।
कहत कबीर सुनहु मेरी माई ।
पूरनहारा त्रिभुवनराई।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत पंक्तियाँ संत कबीर द्वारा रचित 'कबीर के पद' से उद्धृत है।

प्रसंग-प्रस्तुत पद में कबीर ने संसार से विरक्त होने की घटना का वर्णन करते हैं।

व्याख्या-कबीर ने वस्त्र बुनने का कार्य छोड़ दिया। उनके रोम-रोम में राम नाम भर गया। इस कारण कबीर की माँ ठगी-सी रोती है और कहती है कि हे प्रभु ! यह बालक कैसे जीवन-निर्वाह करेगा? कबीर माँ को समझाते हुए कहते हैं कि मैं एक क्षण भी प्रिय राम को नहीं भुला सकता। मैं जब नली के छेद में तागा भरता रहूँगा तब तक राम नाम बिसरा रहेगा। ऐ माँ ! तू मेरे लिए चिन्ता मत कर। प्रभु सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला है।

अवतरण- (xi)

निरगुन राम जपहु रे भाई
अविगत की गति लखी न जाई।
चारि वेद अरु सुम्रित परांनाँ, नौं व्याकरण मरम न जांनां।
सेस नाग जाकै गरुड़ समांनां, चरन कंवला कंवल नहि जांनां।
कहै कबीर सो भरमै नाहीं, जिन जन बैठे हरि की छाँहीं।

सन्दर्भ-प्रस्तुत पद्य अवतरण संत कबीर रचित 'पद' शीर्षक से अवतरित किया गया है।

प्रसंग- निर्गुण निराकार ब्रह्मा की गति, स्वरूप तथा उसके महात्म्य की चर्चा यहाँ की गयी है।

व्याख्या-इस पद में बताया गया है कि वह प्रभु बुद्धि तथा शास्त्र से परे हैं। उसे मात्र शरणागति के भाव से ही प्राप्त किया जा सकता है, उसका साक्षात्कार किया जा सकता है। संत कबीर कहते है कि हे भाइयों, निर्गुण राम का जप करो। उसकी गति को लखा (देखा) नहीं जा सकता है। निर्गुण होने के कारण भी और इन्द्रियातीत होने के कारण भी वह हमारी बुद्धि के परे है, अतः बुद्धि के द्वारा उसके विषय में जानकारी नहीं हो सकती है। चारों वेद, स्मृति ग्रंथ, पुराण और नौ व्याकरण भी उसके मर्म को नहीं जान पाये। परम ज्ञानी समझे जाने वाले शेषनाग को भी विष्णु की सवारी गरुड़ खा जाता है। तात्पर्य यह है कि गरुड़ के

समक्ष शेषनाग का ज्ञान व्यर्थ हो जाता है। विष्णु के चरण कमलों की निरन्तर सेवा करने वाली लक्ष्मी भी उनके मर्म को नहीं जानती हैं। अर्थात् निरन्तर साहचर्य और ज्ञान की अधिकता मात्र उसके स्वरूप-ज्ञान में सहायक सिद्ध नहीं होते हैं। कबीर कहते हैं कि जो प्रभू की शरण में आ जाते हैं उनको किसी प्रकार का भ्रम नहीं रहता है और वे ही प्रभु के मर्म से परिचित हो पाते हैं।

विशेष-(1) राग-गौरी

(2) अलंकार-सम्बंधातिशयोक्ति, पर्यायोक्ति।

अवतरण- (xii)

कबीर सूता क्या करै, जागि न जपै मुरारि।
इक दिन सोवन होइगा, लांबे गोड़ पसारि ।।
तूं तूं करता तूं भया, मुझ मैं रही न हूं।
वारी तेरे नांउं परि, जित देखौं तित तूं।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत दोहा कबीर जी रचित 'साखी' शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग-भजन महिमा।

व्याख्या-सन्त कबीर जी कहते हैं कि ऐ मनुष्य तू सो-सोकर क्या करेगा? जागकर भगवान् को क्यों नहीं जपता। एक दिन तो तुझे लंबे पैर पसार कर सोना ही है। अर्थात् एक दिन जब मृत्यु हो जायेगी तब पैर लंबे करके ही सोना है सदैव के लिए। तात्पर्य है कि मन को जागरूक कर नाम स्मरण की ओर उसे उन्मुख कर दो।

सन्त कबीर जी कहते हैं तेरे ध्यान में तू तू शब्द बोलते-बोलते मैं तुझमें में परिवर्तित हो गया हुँ, मुझमें 'मैं' अर्थात् मेरा अपनापन कुछ भी रह ही नहीं गया है, मेरी अहम की भावना पूर्णतया समाप्त हो गई है। मैंने स्वयम् को तुझमें समर्पित कर दिया है। अब तो मैं जिस ओर देखता हूँ मुझे बस तू ही तू दिखाई देता है।

अवतरण- (xiii)

कबीर माया पापिनीं, लालै लाया लोग।
पूरी किनहुं न भोगिया, इनका इहै बिजोग।।1।।
बाड़ चढ़ंती बेलरी, उरझी आसा फंध।
टूटै पर छूटै नहीं, भई जो बाचाबंध।। 2।।
त्रिस्नां सींचीं नां बुझै, दिन दिन बढ़ती जाइ।
जावासा का रूख ज्यौं, घन मेहां कुम्हिलाइ।।3।।
कबीर माया मोहिनीं, जब जगु घाला घांनि।
कोई एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल की कांनि।।4।।
बगुली नीर बिटारिया, सायर चढ़ा कलंक।
और पंखेरू पी गए, हंस न बोरै चंच।।5।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत पद्य अंश कबीर रचित साखी शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग-प्रस्तुत दोहे में कबीर जी ने माया के सन्दर्भ में अपने विचार व्यक्त किए हैं।

व्याख्या-कबीर जी **पहले दोहे** में कहते हैं कि माया बड़ी पापिनी है। यह संसार के सभी प्राणियों में अपने प्रति लालसा जगा देती है। इसका भोग कोई भी पूरी तरह नहीं कर पाता है। सबको इसके वियोग का दुःख भोगना पड़ता है। **दूसरे दोहे** में कबीर जी कहते हैं, संसार रूपी बगीचे पर माया की बेली चढ़ रही है और आशाओं के फंदों में वह बेलि उलझि कर रह गई है। कितना भी प्रयत्न किया जाए, यह बेलि अलग नहीं की जा सकती,वह टूट भले ही जाए। ऐसा प्रतीत होता है कि वह जीवात्मा को जकड़े रहने के लिए बचनबद्ध है-जीवात्मा को [illegible] है।

[illegible] विषय क जल स सींच[illegible]
दिन-दिन प्रबल होती जाती है। जवासे की भाँति यह प्रभु-भक्ति रूपी जोरदार वर्षा के द्वारा ही कुम्हलाती है। **चौथे दोहे** में कबीर जी कहते हैं कि माया सभी को अपनी ओर आकर्षित करने वाली है। इसने संपूर्ण संसार को अपने फंदे में डालकर तेली की घानी के समान पीस डाला है। वे ही विरले व्यक्ति इसके प्रभाव से बच पाते हैं जो सांसारिक परम्पराओं को छोड़कर साधु-संतों के बीच बैठने लगते हैं। कबीर जी **पांचवें दोहे** में कहते हैं माया रूपी बगुली ने जल गंदा कर दिया और संसार का वातावरण रूपी सागर दूषित हो गया। सामान्य व्यक्ति तो विषय वासना रूपी जल का भोग करते रहे, परन्तु हंस रूपी विद्वान् व्यक्ति ने उसका स्पर्श तक नहीं किया।

(3) सूरदास

अवतरण (i) सोभा सिंधु न अन्त रही री।
नन्द-भवन भरि पूरि उमँगि चलि, ब्रज की बीथिनि फिरति बही री।
देखी जाइ आजु गोकुल मैं, घर-घर बेंचति फिरति दही री।
कहँ लगि कहौं बनाइ बहुत बिधि, कहत न मुख सहसहुँ निबही री।
जसुमति-उदर अगाध-उदधि तैं उपजी ऐसी सबनि कही री।
सूर श्याम प्रभु इन्द्र-नीलमनि, ब्रज-बनिता उर लाई गही री।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत काव्य अवतरण सूरदास द्वारा विरचित 'सूर संग्रह से अवतरित है।

प्रसंग-प्रस्तुत पद में भक्त कवि सूरदास जी ने गोपी के माध्यम से भगवान् कृष्ण की शोभा का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है।

व्याख्या-एक सखी दूसरी से कहती है कि भगवान् की शोभा का कोई अन्त ही नहीं है। वह शोभा और सुन्दरता नन्द के भवन को पूर्णत: आपूरित करके और फिर उफना कर गोकुल की गलियों में बह रही है। आज जब मैं गोकुल में घर-घर जाकर दही बेच रही थी तो मैंने कृष्ण-शोभा का प्रभाव देखा। मैं कहाँ तक उस सौन्दर्य और शोभा का वर्णन करूँ क्योंकि हजारों मुखों से भी कहने पर उसका निर्वहन नहीं किया जा सकता, अर्थात् उसे हजारों मुखों से भी वर्णित नहीं किया जा सकता। ऐसा सब कह रहे हैं कि यह शोभा यशोदा मइया के उदर-रूपी अथाह समुद्र से उत्पन्न हुई है। सूरदास जी कहते हैं कि इन्द्र नीलमणि के समान वर्ण वाले भगवान् कृष्ण को ब्रज की स्त्रियों ने अपने हृदय में बसाकर ठीक से पकड़-जकड़ रखा है।

अवतरण (ii) हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ।
समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ।
इक लोहा पूजा मैं राखत, इक घर बधिक परौ।
सो दुबिधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ।
इक नदिया इक नार कहावत, मैलौ नीर भरौ।
जब मिलि गए तब एंक बरन ह्वै, गंगा नाम परौ।
तन माया, ज्यौ ब्रह्म कहावत, सूर सु मिलि बिगरौ।
कै इनकौ निरधार कीजियौ, कै प्रन जात टरौ।।

सन्दभ-प्रस्तुत काव्य अवतरण सूरदास द्वारा विरचित 'सूर संग्रह से अवतरित है।

प्रसंग-प्रस्तुत पद में भक्त सूरदास अपने आराध्य से विनती करते हैं कि हे प्रभु मेरी कमियों पर ध्यान न देकर तुम मुझे अपनी शरण में ले लो।

व्याख्या-सूरदास जी अपने आराध्य से विनती करते हुए कहते हैं, हे प्रभु ! आप मेरे दोषों पर ध्यान मत दीजिए, आपका नाम तो समदर्शी है आप अपनी इस विशेषता को ध्यान में रखते हुए हमें भवसागर से पार उतारिये। जिस प्रकार एक लोहा पूजागृह में रखा जाता है दूसरा बधिक (कसाई) के घर में भी विद्यमान रहता है जो पशु-वध के कार्य में लाता है किन्तु पारस पत्थर इन दोनों लोहे टुकड़ों में कोई भेदभाव नहीं करता, उसे जिस लोहे के टुकड़े से स्पर्श करा दो उसी को शुद्ध सोने में परिवर्तित कर देता है।। इसी प्रकार एक नदी जिसमें स्वच्छ जल प्रवाहित होता है तथा एक नाला जिसमें गंदा जल बहता है दोनों जब गंगा में जाकर एकाकार हो जाते हैं तो स्वयं गंगा बन जाते हैं और उनका नाम अभिन्न रूप से गंगा पड़ जाता है।। सूरदास जी कहते हैं शरीर को माया तथा जीव को ब्रह्म का स्वरूप या अंश कहा जाता है इसका तात्पर्य है जीव माया की संगत से बिगड़कर विषय इत्यादि में फँस जाता है। सूरदास जी कहते हैं कि प्रभु आप इस बात का (शरीर एवं जीव) न्याय कीजिए कि इसमें भला जीव का क्या दोष है, वह तो बेचारा ब्रह्म रूप ही था किन्तु माया के वशीभूत होकर बिगड़ गया अर्थात् बाहरी दोषों से वशीभूत हो गया है। प्रभु आप न्याय कीजिए नहीं तो आपका प्रण टल जायेगा और यह कथन भी मिथ्या हो जायेगा कि आप समदर्शी हैं।

विशेष-विनय भक्ति के अन्तर्गत पतित रूप का चित्रण है।

अवतरण (iii) कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत।
प्रभु पौढ़े पालनै अकेले, हरषि-हरषि अपनैं रँग खेलत।।
सिव सोचत बिधि बुद्धि विचारत बट बाढ्यौ सागर जल झेलत।
विडरि चले बन प्रलय जानि कै दिगपति दिग दंतीनि संकेलत।।
मुनि मन भीत गए भुव कंपित सेष सकुचि सहसौ फन पेलत।
उन ब्रज-बासिनि बात न जानी, समुझे सूर सकट पग ठेलत।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग—सूरदास श्रीकृष्ण द्वारा अपने पैर के अंगूठे को मुँह में देने पर उत्पन्न प्रलय का वर्णन करते हैं।

व्याख्या—भगवान् श्रीकृष्ण हाथ में पकड़कर पैर का अंगूठा मुख में डालते हैं। पालने में अकेले लेटे हैं (इस समय उनके पालने के पास कोई नहीं है), वह बार-बार अकेला होकर अपनी ही धुन में-अपनी मस्ती में खेल रहे हैं (पूर्व में प्रलय के समय वट पत्र पर भगवान् ने इस प्रकार का रूप धारण किया था)। उनके इस रूप और उनकी इस लीला को देखकर शिवजी सोचने लगते हैं और ब्रह्मा जी विचार करने लगते हैं-असमय ही प्रलय-काल उपस्थित हो गया। प्रलय काल सन्निकट होते जानकर वट-वृक्ष बढ़ा हो गया। बढ़ते हुए वृक्ष जल में डूबने के कष्ट को वह झेलने लगता है। यह परिस्थिति देखकर बादल प्रलय-काल जानकर डर के मारे तितर-बितर होने लगे और दिशाओं के स्वामी दिशाओं को धारण करने वाले हाथियों को इकट्ठा करने लगे। मुनिगण मन में भयभीत हुए धरती काँप उठी (भूचाल आ गया) और शेषनाग ने संकुचित होकर अपने हजार फनों को (पृथ्वी का भार संभालने के लिए) ले दिया। सूरदास कहते हैं कि इतना सब कुछ घटित हो जाने पर भी ब्रजवासियों ने कुछ भी न जाना-ब्रजवासियों पर इन घटनाओं का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे तो (सहज भाव से) यही समझते रहे कि श्रीकृष्ण अपने पैर से छकड़े को धक्का दे रहे हैं।

अवतरण- (iv)

अबिगत-गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूँगे मीठे फल को रस, अन्तरगत ही भावै।
परम स्वाद सबही सु निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन-बानी कौं अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै।
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु, निरालम्ब कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं, सूर सगुन-पद गावै।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद में निर्गुणोपासनागत व्यावहारिक कठिनाई पर प्रकाश डालते हुए सगुणोपासना का विधान किया गया है।

व्याख्या-महाकवि सूरदास जी कहते हैं कि उस अनिर्वचनीय ब्रह्म का वर्णन करना सम्भव नहीं बनता। साधनागत अनुभूतियों के द्वारा उसे जाना तो जा सकता है, किन्तु उसका वर्णन वाणी की पहुँच से परे है। जिस प्रकार गूँगा मनुष्य मधुर फल का रसास्वादन तो करता है, किन्तु उसके आनन्द को व्यक्त करने में असमर्थ रहता है ठीक उसी प्रकार साधक भी निर्गुण ब्रह्म का बोध होने पर आनन्द का अनुभव करता है, किन्तु उसे कह नहीं पाता। कवि पुनः कहता है कि निर्गुण ब्रह्म मन और वाणी की गति से परे हैं। उसे केवल वही जानता है जो पाता है। उस आलम्बरहित ब्रह्म को पाने के लिए जिसकी न कोई रूपरेखा है, न जिसकी कोई जाति है और न जिसे पाने का कोई सांसारिक उपाय है, मन को कहाँ-कहाँ दौड़ाया जाय। सूरदास कहते हैं कि ऐसी स्थिति में निर्गुण ब्रह्म को सब प्रकार अगम सोचकर मैं सगुण ब्रह्म की लीला का गान कर रहा हूँ।

विशेष-(1) प्रस्तुत पद में सूर की साधना व्यक्त हुई है। बहुत ही कम शब्दों में कवि ने ब्रह्म की अग्राह्यता तथा सगुण (साकार) ब्रह्म की सुबोधता का वर्णन करने में पूर्णतः सफलता पाई है।

अवतरण- (v)

अब कै राखि लेहु भगवान
हौं अनाथ बैठ्यो द्रुम-डरिया, पारधि साधे बान ।।
ताकैं डर मैं भाज्यौ चाहत, ऊपर दुक्यौ सचान ।
दुहूँ भाँति दुःख भयो आनि यह, कौन उबारै प्रान ?
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, कर छूट्यौ संधान ।
सूरदास सर लग्यो सचानहिं, जय-जय कृपानिधान।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद में कवि सूरदास जी ने भगवान की दयालुता का वर्णन एक बहेलिया निशाना साधे हुये है ऐसी विकट परिस्थिति में भगवान किस प्रकार उसको रक्षा है उसी का चित्रण कवि प्रस्तुत पद में किया है। पक्षी अपनी असहाय अवस्था में भगवान

निवेदन करता है-

व्याख्या-हे भगवान लगाये हुये है। उसके भय मंडरा रहा है। इस प्रकार की कौन रक्षा करेगा? अ ही सर्प ने बहेलिया को लग गया। इस प्रकार पक्षी

विशेष-(1) इस प (2) बाज और शिक (3) काव्य की पं

अवतरण (v)

हरि-स्वर ज
अधोमुख र
छूटे चिहुर,
हरि-संदेश
सूर स्याम

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद का बड़ा मार्मिक वर्णन

व्याख्या-गोपियाँ कृष्ण के विरह में खुश हैं। पहला शारीरिक शो में राधा की मलिनता क होने के कारण राधा म गयी है। प्रेमास्पद की एक क्षण को विमुक्त रासलीला की थी। उस था। आज कृष्ण की उसकी दर्शनीय दशा क रहती है। यह कभी भी जुआरी अपनी सम्पूर्ण अपना सर्वस्व कृष्ण चले गये। ऐसी स्थिति है। राधा के बाल बिख गई हो। एक तो राधा संदेश से उसको और समान हो गई है। एक नि:सन्देह हृदयविदारक द्रष्टव्य : कृष्ण के बिना तरह राधा अर्थात् जो के वियोग में दीन-हीन

विशेष- (1) अल सुन्दर प्रयोग हुआ है।
(2) 'सहज मूर्त
(3) राधा की वि
(4) 'हरिसंदेस
चित्रित किय
(5) वियोग शृंग

निवेदन करता है-

व्याख्या-हे भगवान ! मैं वृक्ष की डाल पर अनाथ बैठा हुआ हूँ। नीचे बहेलिया निशाना लगाये हुये है। उसके भय से मैं भागना चाहता हूँ किन्तु देखता हूँ कि ऊपर बाज अपनी घात में मंडरा रहा है। इस प्रकार दोनों दशाओं में मेरे लिये संकट आ गया है। मैं असहाय हूँ। मेरे प्राणों की कौन रक्षा करेगा? अतः हे भगवान इस बार मेरी रक्षा कर दीजिये। भगवान का स्मरण करते ही सर्प ने बहेलिया को डंस लिया उसके हाथ से बाण छूट गया और वह जाकर बाज पक्षी को लग गया। इस प्रकार पक्षी को संकट से मुक्ति मिल गई। हे कृपानिधान भगवान अपकी जय हो।

विशेष-(1) इस पद में भगवान की शरणागत रक्षा का वर्णन है।

(2) बाज और शिकारी को साधक की द्विविधा की स्थिति का प्रतीक भी माना जा सकता है।

(3) काव्य की पाँचवी पंक्ति में रूपक अतिश्योक्ति अलंकार है।

अवतरण (vi) **अतिमलीन वृषभानु कुमारी।**

हरि-स्रम जल अंतर-तनु भीजे ता लालच न धुआवति सारी।
अधोमुख रहति उरध नहिं चितवति ज्यों गथ हारे थकित जुआरी।
छूटे चिहूर, वदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी ।
हरि-संदेश सुनि सहज मृतक भई, इक विरहिनि दूजे अलिजारी।
सूर स्याम बिनु यों जीवित हैं ब्रज बनिता सब स्याम दुलारी ।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद में राधा तथा अन्य ब्रजवासिनों का श्रीकृष्ण के विरह-वियोग की स्थिति का बड़ा मार्मिक वर्णन किया गया है।

व्याख्या-गोपियाँ राधा की दैन्यावस्था का वर्णन करती हुई उद्धव से कहती हैं किक कृष्ण के विरह में वृषभानु की पुत्री राधा अत्यन्त मलिन हो गयी हैं मलिन के दो अर्थ होते हैं। पहला शारीरिक शैथिल्य एवं खिन्नता और दूसरा वस्त्रों की मलीनता। उक्त दोनों ही अर्थों में राधा की मलिनता का वर्णन करती हुई गोपियाँ कहती हैं कि कृष्ण के श्रमजल से संसिक्त होने के कारण राधा मोहवश अपनी साड़ी नहीं धुलाती। फलस्वरूप वह अत्यन्त मैली हो गयी है। प्रेमास्पद की वस्तुओं एवं कृत्यों से प्रेमी को इतना लगाव हो जाता है कि वह उससे एक क्षण को विमुक्त नहीं होना चाहता है। राधा ने उसी साड़ी को पहनकर कृष्ण के साथ रासलीला की थी। उस समय सात्त्विक भाव-प्रसूत प्रस्वेद से उसका सम्पूर्ण शरीर भीग गया था। आज कृष्ण की अनुपस्थिति में उस साड़ी का परित्याग वह कैसे कर सकती है? आगे उसकी दयनीय दशा का वर्णन करती हुई गोपियाँ कहती हैं कि राधा सर्वदा मुख नमित किये रहती है। वह कभी भी ऊर्ध्व दृष्टि से नहीं देखती। ऐसा लगता है जैसे जुआ खेलने वाला कोई जुआरी अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति हार गया हो और थककर पश्चाताप की मुद्रा में बैठा हो। राधा अपना सर्वस्व कृष्ण पर न्यौछावर कर चुकी है, तिस पर भी वे पराये की तरह मुख मोड़कर चले गये। ऐसी स्थिति में पश्चाताप एवं व्यथा से दुःखी हो जाना उसके लिए स्वाभाविक ही है। राधा के बाल बिखर गये हैं, मुख कुम्हला गया है, जैसे कोई कमलिनी तुषारापात से सूख गई हो। एक तो राधा कृष्ण के विरह-ज्वर में जल रही थी दूसरे उद्धव ने कृष्ण के योग-संदेश से उसको और मर्माहत कर दिया। फलतः अब वह स्वाभाविक रूप से मृतक के समान हो गई है। एक तो वियोग का दारुण दुःख उस पर भी नीरस ज्ञानोपदेश का अशनिपात निःसन्देह हृदयविदारक है। राधा की स्थिति का परिचय देने के बाद गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव ! कृष्ण के बिना उनकी प्रेम-पात्र ब्रज की अन्य स्त्रियाँ भी उसी तरह जल रही हैं जिस तरह राधा अर्थात् जो स्थिति राधा की है वही दशा समस्त गोपियों की है, जैसे राधा, कृष्ण के वियोग में दीन-हीन हो गयी है वैसे अन्य गोपियाँ भी।

विशेष-(1) **अलंकार**-अनुप्रास उपमा,रूपक, वक्रोक्ति एवं अतिश्योक्ति अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(2) 'सहज मृतक' में 'जड़ता' नामक विरह की दशा का संकेत किया गया है।

(3) राधा की वियोग-व्याथा जनित जीवन-स्थिति का बहुत सजीव बिम्ब उभारा गया है।

(4) 'हरिसंदेश सुनि सहज मृतक भई' में हरि संदेश तो 'उद्दीपन विभाव' के अन्तर्गत चित्रित किया गया है।

(5) वियोग शृंगार का अत्यन्त मार्मिक चित्रण है।

अवतरण- (vii) मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी, फिरि जहाज पर आवै।।
कमल-नैन कौं छाँड़ि महातम और देव कौं ध्यावै।
परम गंग कौं छाँड़ि पियासौ दुरमति कूप खनावै।।
जिहिं मधुकर अंबुज रस चाख्यौ, क्यों करील-फल भावै।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु, तजि, छेरी कौन दुहावै।।

सन्दर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग- प्रस्तुत पद में कवि सूरदास जी ईश्वर के प्रति अपने एकनिष्ठ प्रेम का चित्रण किय
है तथा प्रचलित बहुदेववाद को व्यर्थ माना हैं। वह कहते हैं-

व्याख्या- हे भगवान ! मेरा मन आपको छोड़कर अन्यत्र कहाँ सुख पा सकता है
मेरी दशा ठीक उस जहाज के पक्षी की तरह है जो समुद्र में जहाज से उड़कर अन्यत्र जा
तो चाहता है किन्तु फिर कहीं सहारा न पाकर उसी जहाज पर आ जाता है। मेरा मन भी इ
संसार रूपी सागर में ईश्वर के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र सुख नहीं पा सकता। वे लोग महामू
हैं जो कमल के समान नेत्र वाले भगवान को छोड़कर अन्य देवताओं की उपासना के लि
दौड़ते-फिरते हैं। उनकी दशा ठीक वैसे ही है जैसे मूर्ख लोग प्यास लगने पर परिवत्र गं
को छोड़कर कुँआ खुदवाने लगते हैं। भला जिस भौंरे (भक्त) ने कमल (ईश्वर प्रेम) के र
को चख लिया है वह तीखे करील का फल (अन्य देवताओं की भक्ति का आनन्द) क्य
चखेगा? सूरदास जी कहते हैं कि जिसे मनोवांछित फल प्रदान करने वाली कामधेनु उपलब
है वह बकरी का दोहन क्या कराने जाय? अर्थात् जिसे ईश्वर प्राप्त है वह अन्य देवताओं क
उपासना क्यों करने जाय?

विशेष-(1) भगवान के प्रति एकनिष्ठ प्रेम का वर्णन किया गया है।
(2) कूप खनावै -लाक्षणिक प्रयोग हुआ है।
(3) इस पद में दृष्टान्त, उपमा, रूपक अलंकार का बड़ा सुन्दर प्रयोग हुआ है।

अवतरण (viii) तजौ मन हरि बिमुखन को संग।
जिनके संग कुमति उपजति है, परम भजन में भंग।।
कहा होत पय पान कराएँ विष नहिं तजत भुजंग।
कागहिं कहा कपूर चुगाएँ स्वान नहाए गंग।।
खर कौ कहा अरगजा लेपन मरकट भूषन अंक।
गज कौ कहा सरित अन्हवाएँ बहुरि धरै वह ढंग।।
पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतो करत निषंग।
'सूरदास' कारी कामरि पै, चढ़त कन दूजौ रंग।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग—प्रस्तुत पद में कवि ने भगवान् की भक्ति से रहित व्यक्ति का साथ छोड़ने क
सलाह दी है।

व्याख्या—प्रस्तुत पद में सूरदास जी कहते हैं कि हे मन, प्रभु भक्ति से दूर रहने वा
असन्तों का साथ छोड़ देना चाहिए क्योंकि ऐसे व्यक्ति का साथ करने से कुबुद्धि ही पैदा होत
है जिससे प्रभु भजन में व्यवधान पड़ता है। उन्हें सुधारने का प्रयास निरर्थक ही रहेगा, क्योंकि
विषैले साँप को दूध पिलाने से क्या लाभ होगा। वे अभक्ष्य का भक्षण निश्चित रूप से करेंगे। गध
के शरीर पर सुगन्धित द्रव्य का लेप करने तथा बन्दर को आभूषण पहनाने से क्या लाभ है? हाथ
को नदी में स्नान कराने से क्या लाभ है क्योंकि वह पुनः धूल को ही धारण कर लेगा। पतित रू
पत्थर सदुपयोग रूपी बाणों से नहीं बिंधता, उसे बीधने की कोशिश में तरकश खाली करना व्य
है। सूरदास जी कहते हैं कि जिस प्रकार काली कमरी को दूसरे रंग में नहीं रंगा जा सकता
ठीक उसी प्रकार दुष्टजनों के ऊपर सत्संग का प्रभाव नहीं पड़ेगा, अतः ऐसे असन्तों का सा
त्याग देना चाहिए।

विशेष— (1) प्रस्तुत पद में अनुप्रास अलंकार है।
(2) उपमा अलंकार भी दर्शनीय है।

अवतरण (ix)

निर्गुन कौन देश को बासी?
मधुकर ! हँसि समुझाय, सौंह दे बूझति साँच, न हाँसी।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी?
कैसो बरन, भेस है कैसो केहि रस में अभिलासी।
पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे ! कहैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठग्यो सो ऊर सबै मति नासी।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-'भ्रमर गीत प्रसंग' के इस पद में गोपिकाओं द्वारा उद्धव की खिल्ली उड़ायी गयी है। निर्गुण ब्रह्म का परिचय एक मनुष्य के समान पूछ कर गोपियां उद्धव को निरूत्तर कर देती है। यह पद सूर की वाग्विदग्धता का भी सुन्दर उदाहरण है।

व्याख्या-गोपी उद्धव से कहती हैं तुमने जिस निर्गुण ब्रह्म की चर्चा की, वह किस भूमिभाग का निवासी है? समझा कर बताओं हम सचमुच जाना चाहती हैं, परिहास नहीं कर रही हैं। उनके माता-पिता कौन है? उसकी पत्नी कौन है? दासी कौन है? उसका रंगरूप और वेशभूषा कैसी है? उसकी किस रस में अभिलाषा है। वह किस रस का इच्छुक है। अर्थात् उसकी रुचि क्या है? यदि हमसे कपट करोगे तो अपने किये का फल भुगतोगे। गोपियों की चतुराई से भरी इन व्यंग्योक्तियों को सुनकर उद्धव की सारी तर्क बुद्धि नष्ट हो गयी और वे बावले के समान मौन रह गये।

विशेष-(1) वक्रोक्ति, अन्योक्ति, मानवीकरण अलंकार।

(2) वियोग श्रृंगार रस

(3) यहाँ उद्धव द्वारा उपदिष्ट निर्गुण ब्रह्म के विषय में गोपियों की सहज जिज्ञासा प्रकट करके परोक्ष रूप से व्यंग्य किया गया है।

(4) नारी वर्ग की लोकमति के अनुरूप व्यंग्यात्मक शब्दावली का प्रयोग है।

अवतरण (x)

देखौ माई दधिसुत मैं दधि जात।
एक अचभों देखि सखी री, रिपु रिपु जु मैं समात।।
दधि पर कीर, कीर पर पंकज, पंकज कै द्वै पात।
यह सोभा देखत पसु पालक, फूले अँग न समात।।
बार-बार बिलोकि सोच चित, नंद महरि मुसकात।
यहै ध्यान मनि आनि स्याम को 'सूरदास' बलि जात।।

संदर्भ एवं प्रसंग—प्रस्तुत पद्य 'सूर संग्रह' में संकलित पदों से उद्धृत है। इस पद्य में सूर ने श्री कृष्ण की बाल लीला का अत्यन्त सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

व्याख्या प्रथम—हे सखि ! देखो, चन्द्रमा में समुद्र समा रहा है। हे सखि ! एक अचम्भे की ओर देखो, चन्द्रमा राहु को ग्रस रहा है। दही पर तोता, तोते पर कमल और कमल के दो पत्ते हैं कृष्ण की इस शोभा को देखकर ग्वाले फूले अंग नहीं समाते। नन्द उनके सौन्दर्य को बार-बार देखकर मन में विचार करके मुस्करा रहे हैं। कृष्ण के इसी रूप का ध्यान में आते ही सूरदास उस पर बलिहारी हो जाते हैं।

व्याख्या द्वितीय-हे सखि ! देखो, कृष्ण के चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख में दही समा रहा है अर्थात् वे दही खा रहे हैं। हे सखि एक आनन्द की बात यह भी देखो कि वे हाथ में दही लेकर अपने मुख में खा रहे हैं। उनके दधि युक्त मुख पर तोते की चौंच जैसी सुन्दर नासिका है। नासिका पर कमल के समान सुन्दर नेत्र हैं। कमल के दो खिले हुए पत्तों के समान सुन्दर उनके दोनों कान हैं। कृष्ण की इस शोभा को देखकर ग्वाले फूले अंग नहीं समाते। नन्द उनके सौन्दर्य को बार-बार देखकर और उनका अपने विचार करके आनन्दित होकर मुस्करा रहे हैं। कृष्ण के इसी रूप का ध्यान मन में आते ही सूरदास उस पर बलिहारी हो जाते हैं।

विशेष- (1) **अलंकार-**श्लेष, रूपकातिश्योक्ति अलंकार एवं अनुप्रास अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(2) उलटबाँसी का चमत्कार मन को सम्मोहित करता है।

(3) चन्द्रमा की उत्पत्ति समुद्र से मानी गयी है। अतः यदि चन्द्रमा समुद्र में समा जाये कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आश्चर्य तो यही है कि समुद्र चन्द्रमा में समा रहा है और राहु चन्द्रमा ग्रस कर रहा है।

अवतरण (xi) बिनु गोपाल वैरनि भई कुंजै।
तब वे लता लगत तनु सीतल भव भई विषम अनल की पुंजै।।
वृथा बहति जमुना खग बोलत, वृथा कमल फूलन अलि गुंजै।
पवन पानि घन सारि कमल दै, दधि सुत किरनि भानु भई भुंजै।।
यह उधौ ! कहियौ माधौ सो मदन मारि कीन्ही हम लुंजै।
सूरदास प्रभू तुम्हारे दर कौ मग जोवत आँखियाँ भई धुंजै।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत पद सूरदास द्वारा विरचित 'सूरसंग्रह' के 'उद्धव गोपी संवाद' शीर्षक अवतरित किया गया है।

प्रसंग-उद्धव का हृदय परिवर्तन होता है और गोपियाँ कृष्ण को उद्धव के द्वारा संदे प्रेषित करती हैं। गोपियाँ पत्र लिखकर कृष्ण से निवेदन करती हैं कि आपके बिना ब्र अनाथ हो गया है। आपके बिना हमारे प्राण निरर्थक हैं तथा जहाँ प्रीति है वहाँ उसका अ तक निर्वाह होना चाहिए। आपके बिना स्थूल एवं सूक्ष्म, जड़ एवं चेतन सभी हमारे शत्रु गये हैं।

व्याख्या-कृष्ण के बिना वे लताकुंज जिनमें हमने उनके साथ मिलकर बिहार कि था आज दुश्मन की तरह दिखाई पड़ती है। जब कृष्ण हम लोगों के बीच थे तब यही ल कुंज हम लोगों के तन-मन को शीलता और ठन्डक पहुँचाती थी लेकिन आज निर्मम अ का घना समूह तथा आग की घनी मोटी लपट प्रतीत होती है। जमुना का बहना,पक्षियों चहचहाना, कमल का फूलना और उस पर भौरों का गुंजार सभी कुछ निरर्थक और बेक प्रतीत होता है। मलयानिल पवन, पान, कपूर, कमल सुख दायी लगे हैं। यहाँ तक चन्द्र का किरण चाँदनी, जिसकी छाया में हम गोपियों ने कृष्ण के साथ मिलकर रास क्रीड़ा थी और अनुपम एवं अद्वितीय आनन्द को प्राप्त किया था, आज प्रचण्ड सूर्य को दग्ध देने वाली किरणों के समान लगती हैं। हे उद्धव कृष्ण से कहना कि उनके वियोग में काम ने मारकर हमें लुंज-पुंज कर दिया। उनकी उपस्थिति में ब्रज की चीजें जो हमें आनन्ददा और रुचिकर प्रतीत होती थीं आज उनकी अनुपस्थिति में पीड़ा पहुँचाने वाली बन गयी सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव कृष्ण से कहना कि तुम्हारी बाट जो जोहते हम लोगों की आँखों की ज्योति धुंधली पड़ गयी हैं। इसलिए विलम्ब न करें। उ उनके लौटने तक हमारी आँखों की ज्योति चली गयी तो उनके आने से क्या फायदा क्यों आँखें जो उनके दर्शन के लिए लालायित एकटक मथुरा की मार्ग पर लगी हैं उन्हें देख नहीं पावेंगी।

विशेष- गोपियाँ उद्धव के माध्यम से अपने व्यथित मनोदसा का संदेश कृष्ण को भेज हैं। गोपियों की विरहावस्था में सारी वस्तुएँ चाहे वे जड़ हों या जंगल, स्थूल हों सूक्ष्म सब प्रपीड़ादायक हैं। इस पद में सूर ने गोपियों की आन्तरिक वेदना को ह ही सशक्त प्रतीकों से प्रस्तुत किया है।

अवतरण (xii) ऊधौ मन न भए दस बीस।
एक हुतौ सो गयौ स्याम संग, को अवराधै ईस।
इंद्री सिथिल भई केसव बिनु, ज्यौं देही बिनु सीस।
आसा लागिं रहति तन स्वासा जीवहिं कोटि बरीस।।
तुम तौ सखा स्यामसुन्दर के सकल जोग के ईस।
'सूर' हमारै नन्दनंदन बिनु, और नाहिं जगदीश।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत पद्य 'सूर संग्रह' में संकलित पदों से उद्धृत है।

प्रसंग—सूरदास द्वारा विरचित इस पद में गोपियों उद्धव के उबाऊ निर्गुण ब्रह्म एवं यो सम्बन्धी उपदेश से छुटकारा पाने का अकाट्य तर्क से समर्थित ज्ञान प्रस्तुत कर रही हैं।

व्याख्या—उद्धव हमारे पास कोई दस बीस मन (हृदय) तो है नहीं कि भाई चलो तु इतनी दूर से आये हो तो उपकृत करने के लिए तुम्हारे निर्गुण को भी स्थान दे दूँ। यहाँ तो एक मन था वह भी कृष्ण के साथ ही चला गया अब भला तुम्हीं बताओ कि तुम्हारे निर्गुण ईश्वर आराधना कौन करे? कृष्ण के बिना सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयी जैसे बिना सिर के देह। अटूट आशा जरूर मन में लगी है कि कभी न कभी कान्हा ब्रज आवेंगे, हमारा उनका मिल होगा-इसी आशा के कारण शरीर में श्वास आ-जा रही है और कदाचित् इसी आशा में सैक

वर्ष तक जीवित रहूँगी और
हो तथा पूर्ण योग के ज्ञाता
कोई भी जगदीश या आरा
विशेष-(1) अलंकार-
(2) कृष्ण के प्र
उपासना क
(3) उद्धव के
मन होने क

अवतरण (xiii) मु
सु
रा
को
अ
अ
भृ
सू

सन्दर्भ-पूर्ववत्।

प्रसंग-सूरसागर के
वंशी बजाते हुये कृष्ण क
का सुन्दर वर्णन है।

व्याख्या-गोपी अ
नचाती है, कष्ट देती है पि
है और इस प्रकार उन प
आज्ञा करवाती है अर्था
गिरिधारी कृष्ण के अत्य
झुकवा देती है। स्वयं यह
हाथों से अपने पैर दबव
उठाना) (मुरली बजाते
हम पर कृष्ण को क्रोधित
हो जाय तो तत्काल धड़
पावें।

विशेष-(1) सां
(2) मुरली का ए
(3) गोपियों की
स्पष्टीकरण बड़े ही सह
(4) प्रेमाधिकार

अवतरण (xiv)

सन्दर्भ-पूर्ववत्

व्याख्या-गोपी ने
लकड़ी। जैसे हारिल प
पतली लकड़ी कसकर

वर्ष तक जीवित रहूँगी और सैकड़ों वर्ष तक इसी तरह प्रतिक्षा करती रहूँगी। तुम तो कृष्ण के मित्र हो तथा पूर्ण योग के ज्ञाता हो। सूरदास कहते है कि गोपियों ने कहा कि कृष्ण के अतिरिक्त हमारा कोई भी जगदीश या आराध्य नही है।

विशेष-(1) **अलंकार**-अनुप्रास एवं उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(2) कृष्ण के प्रति गोपियों के अटल प्रेम की अभिव्यक्ति के साथ-साथ निर्गुण उपासना का विरोध है।

(3) उद्धव के निर्गुण-ब्रह्म की उपासना से पीछा छुड़ाने के लिए गोपियाँ एक ही मन होने का बहाना बनाती हैं।

अवतरण (xiii) **मुरली तऊ गुपालहिं भावति।**
सुनि री सखी जदपि नंदलालहिं,नाना भांति नचावति।।
राखति एक पाँइ ठाढ़ौ करि, अति अधिकार जनावति।
कोमल तन, आज्ञा करवावति, कटि टेढ़ी ह्वै आवति।।
अति अधीन, सुजान कनौड़े, गिरिधर-नारि नवावति।
आपुन पौढ़ि अधर सज्जा पर, कर पल्लव सन पद पलुटावति।।
भृकुटी कुटिल, कोप नासापुट, हम पर कोपि कृपावति।
सूर प्रसन्न जानि सकौ छिन, धरतै सीस डुलावति।।

सन्दर्भ-पूर्ववत्।

प्रसंग-सूरसागर के दशम स्कंध के अन्तर्गत 'मुरली प्रसंग' शीर्षक से गृहीत प्रस्तुत पद में वंशी बजाते हुये कृष्ण की शोभा एवं वंशी के प्रति गोपियों की नारी सुलभ ईर्ष्या पूर्ण भावनाओं का सुन्दर वर्णन है।

व्याख्या-गोपी अपनी सखी से कहती है हे सखी ! यह वंशी नाना प्रकार से गोपाल को नचाती है, कष्ट देती है फिर भी यह उनको अत्यधिक प्रिय है। यह उनको एक पैर पर खड़ा रखती है और इस प्रकार उन पर अत्यधिक अधिकार प्रकट करती है। कृष्ण के कोमल शरीर से यह आज्ञा करवाती है अर्थात् विभिन्न मुद्रायें बनवाती है, जिससे उनकी कटि टेढ़ी हो जाती है। गिरिधारी कृष्ण के अत्यधिक चतुर होने पर भी वह उनको अपने प्रति कृतज्ञ रखते हुये उनकी गर्दन झुकवा देती है। स्वयं यह कृष्ण के अधर रूपी शय्या पर लेट कर उनके पल्लव के समान कोमल हाथों से अपने पैर दबवाती है। (बंशी बजाते समय उसके छिद्रों पर क्रमशः उँगली रखना और उठाना) (मुरली बजाते समय कृष्ण की) भंव टेढ़ी, नेत्र तथा नासापुट के फड़कने से मानों यह वंशी हम पर कृष्ण को क्रोधित करवाती है। क्षण भर भी वह यदि हम पर प्रसन्न हों और यह मुरली को ज्ञात हो जाय तो तत्काल धड़ से उनके मस्तक को गुमा देती है जिससे हम कृष्ण की कृपापात्र न बनने पावें।

विशेष-(1) सांगरूपक एवं मानवीकरण अलंकार।

(2) मुरली का एक साम्रज्ञी के रूप में चित्रण है, कृष्ण भी जिसके अनुगत हैं।

(3) गोपियों की बातों से मुरली के प्रति उनके मन में जो ईर्ष्या का भाव है उसका स्पष्टीकरण बड़े ही सहज एवं प्रभावी ढंग से हुआ है।

(4) प्रेमाधिकार की भावना का मनोवैज्ञानिक चित्रण है।

अवतरण (xiv) **हमारे हरि हारिल की लकरी।**
मन बच क्रम नंदनंदन सों उर यह दृढ़ करि पकरी।
जागत, सोबत, सपने सौंतुख कान्ह कान्ह जकरी।
सुनतहि जोग लगत ऐसो अलि ! ज्यों करुई ककरी।
सोई व्याधि हमें लै आए देखी सुनी न करी।
यह तौ सूर तिन्हैं लै दीजै जिनके मन चकरी।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

व्याख्या-गोपी ने उद्धव से कहा कि हमारे लिये कृष्ण ऐसे ही हैं जैसे हारिल पक्षी के लिये लकड़ी। जैसे हारिल पक्षी जब उड़ता है या जमीन पर उतरता है तो अपने पंजे में तिनका या छोटी पतली लकड़ी कसकर दबाये रहता है उसी प्रकार मन, कर्म और वचन से हमने भी कृष्ण को

पकड़ रखा है। जागते-सोते सपने में दिन-रात हम निरन्तर कृष्ण-कृष्ण की ही रट लगाये रहते हैं। ऐसी हालत में तुम्हारी योग साधना का उपदेश हमें ऐसा ही लगता है जैसे तुमने हमें कड़वी दवा का स्वाद चखा दिया हो। जिस प्रकार का योग रूपी रोग तुम मुझे लगा रहे हो ऐसा तो न हुआ लोगों ने कभी सुना, न कभी किया, न कभी सोचा या समझा ही था। सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि उद्धव जिसका मन अस्थिर और चंचल हो, चकई के समान चक्कर काटता हो उसको यह गोप-संयम, साधना आदि के उपदेश दो ताकि वह अपने चित्त को स्थिर और संयमित कर सके तुम्हारे उपदेश का सहारा लेकर लेकिन हमारा चित्त तो स्थिर और केन्द्रित है वह भी केवल कृष्ण में। हमें तुम्हारे योग साधना की क्या आवश्यकता?

विशेष-एकात्मक भाव का चित्रण है।

अवतरण (xv) जसुदा मदन गुपाल सोवावै।
देखि सयन-गति त्रिभुवन कंपै, ईस बिरंचि भ्रमावै।।
असित-अरून-सित आलस लोचन उभय पलक परि आवै।
जनु रवि गत संकुचित कमल जुग, निसि अलि उड़न न पावै।।
स्वास उदर उससित यौं, मानौ दुग्ध-सिंधु छबि पावै।
नाभि-सरोज प्रगट पदमासन उतरि नाल पछितावै।।
कर सिर-तर करि स्याम मनोहर अलक अधिक सोभावे।
सूरदास मानौ पन्नगपति, प्रभु ऊपर फन छावै।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत पद सूरदास द्वारा विरचित 'सूरसंग्रह' से उद्धृत है।

प्रसंग-सूरसागर के दशम स्कध से 'बालवर्णन' शीर्षक के अन्तर्गत प्रस्तुत पद है। इसमें सूरदास ने सोते हुये बाल कृष्ण के सौन्दर्य का अतीव मनोहारी एवं आलंकारिक वर्णन किया है।

व्याख्या-यशोदा कामदेव जैसे सौन्दर्य वाले गोपाल को सुला रही है। कृष्ण की बालसुलभ निद्रावस्था देख कर त्रैलौक्य कंपित हो जाता है। शिव ब्रह्मादि देवताओं को कृष्ण के ब्रह्मत्व के विषय में सन्देह होने लगता है। तन्द्रा बोझिल आँखें जो श्याम, अरूण व श्वेत वर्ण से युक्त है। (श्याम वर्ण की पुतली, अरूण वर्ण तन्द्रा के कारण और श्वेत नेत्र गोलक) उन पर जब पलकें गिरती हैं अर्थात् जब कृष्ण निद्रा के वशीभूत हो अपनी आँखें बन्द करते है, तो ऐसा प्रतीत होता है मानों सूर्यास्त हो जाने के कारण भ्रमर युगल कमल में बन्दी हो गये हैं और चाह कर भी उड़ नहीं पा रहे हैं। श्वांस लेने पर उदय यो ऊपर-नीचे हो रहा है मानों तरंगों से युक्त क्षीर सिन्धु शोभायमान हो। इस सुन्दर दृश्य को देखकर विष्णु के नाभि कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा वहाँ से उतर आने के कारण पश्चाताप करते हैं। यदि वे तब उतरे न होते तो इस सौन्दर्यमय झांकी को वे ही अहर्निश निहारने का सुख प्राप्त करते। सिर के नीचे हाथ रख कर सोये कृष्ण की अलकें उनके मुखमण्डल पर शोभायमान हो रही है मानों शेषनाग ने प्रभु के ऊपर अपने सहस्त्र फण फैला कर छाया कर दी हो।

विशेष-(1) सूर उत्प्रेक्षा के सम्राट हैं। उन्होंने यहाँ नेत्र, उदर एवं केशों के सौन्दर्य के लिए तीन मनोहारी उत्प्रेक्षायें प्रस्तुत की है।

(2) वात्सल्य रस के इस पद में कृष्ण के सौन्दर्य को आलम्बन गत उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

(3) परम्परागत उपमानों को भी कवि ने सुन्दर उद्भावना के साथ प्रस्तुत किया है।

(4) ब्रजभाषा का लालित्य अपनी गरिमा के साथ विद्यमान है।

(4) तुलसीदास

अवतरण-(i) सब कहँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मगु एकू।
केहि विधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोई करिअ उपाऊ।
सब सादर सुनि मुनिबर बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी।
उतरु न आव लोग भय भोरे। तब सिरु नाइ भरत कर जोरे।
भानुबंस भए भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बढ़ेरे।
जनम हेतु सब कँह पितु माता। करम सुभासुभ देइ विधाता।
दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीम राउरि जगु जाना
सो गोसाइँ विधि गति जहिं छेंकी। सकइ को टारि टेकजौं टेकी।।
दो०- बूझिअ मोहिं उपाउ अब, सोसब मोर अभागु।
सुन सनेहमय बचन गुर, उर उमगा अनुरागु।

सन्दर्भ-प्रस्तुत काव्य पंक्ति गोस्वामी तुलसीदास द्वारा विरचित 'रामचरित मानस' के अयोध्या काण्ड के अन्तर्गत 'चित्रकूट में ज्ञान सभा से' उद्धृत है।

प्रसंग-प्रस्तुत काव्य अंश में गुरु वशिष्ठ ने अयोध्यावासियों को सम्बोधित करते हुए राम के वन से वापस लौटने के बारे में उपायों पर विचार-विमर्श करके उत्तर देने की बात कही है।

व्याख्या-गुरु वशिष्ठ कहते हैं मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम का राज्याभिषेक सभी लोगों के लिए सुखकर है। वही एक मंगलमय कल्याणकारी प्रमुख मार्ग है। परन्तु किस प्रकार राम अयोध्या वापस लौट आयेंगे आप सभी सोचसमझकर ऐसे उपाय के बारे में हमें बताइये। वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने मुनि वशिष्ठ की बातों को आदर के साथ सुना और समझा, अर्थात् मुनिवर की बातों पर चिन्तन मनन किया। क्योंकि गुरुवर वशिष्ट की बातें नीतियुक्त, स्वार्थ तथा परमार्थ से युक्त थीं। सभी लोग उसे सुनकर भाव-विह्वल हो गये वहाँ उपस्थित लोगों में किसी से उनकी बातों का जबाव देते ही न बना। अन्ततोगत्वा भरत जी सिर झुकाकर हाथ जोड़ते हुए बोले हे गुरुश्रेष्ठ! इस सूर्यवंशी क्षत्रियों में एक से बढ़कर एक चक्रवर्ती एवं प्रतापी राजा हुए हैं। सब के जन्म के कारण तो उनके माता-पिता हुए और शुभ-अशुभ कर्मों का फल देना वाला तो केवल विधाता है। भरत जी आगे कहते हैं किन्तु समस्त प्रकार के दुःखों को नष्ट कर सभी का कल्याण करने वाली इस जगत् में आप की ही आशीष मानी गई है, जिसके सामने हे गुरुदेव! विधाता की गतिविधि पर विराम लग गया है। जिसकी आप प्रतिज्ञा कर लें उस को इस संसार में कौन टाल सकता है।

आप सर्व समर्थ होकर भी प्रभु श्रीराम के अवध वापस आने का उपाय हम लोगों से पूछते हैं, यह मेरा दुर्भाग्य ही है। भरत जी के इस स्नेह से युक्त वाणी को सुनकर गुरु वशिष्ठ के अन्तः करण में भरत के प्रति असीम अनुराग उमड़ पड़ा। अर्थात् भरत के स्नेह से युक्त वचन सुन गुरु के हृदय में उनके प्रति और अधिक लगाव उत्पन्न हो गया।

विशेष- (1) **भाषा**-अवधी भाषा का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
(2) **अलंकार**-अनुप्रास अलंकार का प्रयोग।
(3) चौपाई एवं दोहे का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

अवतरण-(i) प्रभु पद पदुम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुख सींव सुहाई।।
सो करि कहौं हिये अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की।।
सहज सनेह स्वामि सेवंकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई।।
अज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जनु पावइ देवा।।
अस कहि प्रेम बिबस भए भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी।।
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेहु न सो कहि जाई।।
कृपासिधु सनमानि सुबानी। बैठाए समीप गहि पानी।।
भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ।।

सन्दर्भ-पूर्ववत्।

प्रसंग-प्रस्तुत पंक्तियों में गोस्वामी जी ने भरत का राम के प्रति दास्य भाव रूपी भक्ति और प्रेम का वर्णन अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है तथा भरत के प्रेम को देख कर भगवान् राम ने उनको अपने पास बैठा लिया।

व्याख्या-प्रभु आपके चरण कमलों की रज, जो सत्य, सुकृत और सुख की सुहावनी सीमा है, उसकी दुहाई करके मैं अपने हृदय की जागते, सोते और स्वप्न में बी बने रहने वाली रुचि कहता हूं। वह रुचि है-कपट, स्वार्थ और चारों फलों को छोड़कर स्वाभाविक प्रेम से स्वामी की सेवा करना; और आज्ञा पालन के समान श्रेष्ठ स्वामी की कोई सेवा नहीं है। हे देव ! अब वही आज्ञा रूप प्रसाद सेवक को मिल जाए। भरत जी ऐसा कहकर प्रेम से बहुत ही विवेश हो गये हैं। शरीर पुलकित हो उठा नेत्रों में जल भर आया। अकुलाकर अर्थात् व्याकुल होकर उन्होंने प्रभु राम जी के चरण पकड़ लिये। उस समय और स्नेह को कहा नहीं जा सकता। कृपासिंधु श्रीराम जी के सुन्दर वाणी से भारत जी का सम्मान करके हाथ पकड़कर उनको अपने पास बिठा लिया। भरत जी की विनती सुनकर और उनका स्वभाव देखकर सारी सभा और रघुनाथ जी स्नेह से शिथिल हो गये।

विशेष-1.सेवक का स्वामी के प्रति जो स्नेह होता है अथवा कर्त्तव्य होता है वही प्रेम भारत जी अपने बड़े भाई राम से करते हैं इसकी सुन्दर ढंग से दार्शाया गया है।

2.दास्यभाव की भक्ति का चित्रण हुआ है।

3.प्रस्तुत पद में उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।

अवतरण (iii) भरत बचन, सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भएउ बिदेहू।।
भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी।।
गा चह पार जतनु हियँ हेरा। पावत नाव न बोहितु बेरा।।
औरु करिहि को भरत बड़ाई। सरसीं सीपि कि सिंधु समाई।।
भरतु मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए।।
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु।।
बोले मुनिबरु बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी।।
सुनहु राम सर्बज्ञ सुजाना। धरम नीति गन ज्ञान निधाना।।
दो० : सब के उर अन्तर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित, होइ सो कहिअ उपाउ।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत काव्य अंश में गोस्वामी तुलसीदास ने राम के सबसे प्रिय एवं लघु भ्राता भरत जी की वाणी एवं उनके आचरण से प्रभावित जनसमूह की प्रसन्नता का चित्रण किया गया है।

व्याख्या-राम के लघु भ्राता भरत के वचनों को सुनकर तथा उनका प्रेम देखकर सम्पूर्ण सभा सहित मुनि वशिष्ठ विदेह हो गये अर्थात् उन्हें अपने देह तक की सुधि न रह गयी। भरत की महान् महिमा समुद्र की भाँति है। मुनि वशिष्ठ की बुद्धि उसके तट पर खड़ी अबला स्त्री के समान है अर्थात् भरत जी के प्रेम के समक्ष मुनि की बुद्धि विभोर हो जाती है। मुनि की बुद्धिरूपी अबला (समुद्र के) पार जाना चाहती है। उसके पार जाने के लिए हृदय में उपाय भी ढूँढा, पर उस पार जाने को साधन-नाव, जहाज या बेड़ा कुछ न मिल पाया। भरत की बड़ाई और कौन कर सकता है। लघु तालाब की सीपी में कहीं समुद्र समा सकता है। मुनि वशिष्ठ जी की अन्तरात्मा को भरत की बात बहुत अच्छी लगी वे सारे समाज सहित भगवान राम के पास आये। प्रभु ने प्रणाम कर उन्हें सुन्दर आसन दिया। सभी लोग मुनि की आज्ञा सुनकर बैठ गये। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने विचारपूर्वक देश-काल और अवसर के अनुसार कहा- हे सर्वज्ञ! सुजान, धर्म नीति, गुण ज्ञान के भण्डार राम सुनिये-

आप सबके हृदय में बसते हैं और सबके भले-बुरे भाव को जानते हैं जिसमें नगर-निवासियों, माताओं एवं भरत का हित हो, वही उपाय कहिए।

विशेष-1.भगवान् राम का अपने भाई भरत के प्रति आपार भ्रातप्रेम का चित्रण है।

2.चौपाई एवं दोहे में रूपक, अनुप्रास एवं उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

अवतरण (iv) सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी।।
सोक मगन सब सभा खभारू। मनहुँ कमल बन परेउ तुषारू।।
कहि अनेक विधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ज्ञानी।।
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन चंदू।।
तात जायँ जिअँ करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी।।
तीन काल तिभुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें।।
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई।।
दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई।।
दो० : मिटिहइ पापप्रपंच सब अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुख सुमिरत नामु तुम्हार।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-गोस्वामी तुलसीदास ने प्रस्तुत काव्य पंक्तियों में भरत के वेदनाभरे स्वर को सुनकर समस्त सभा का शोकाकुल होना, भरत को गुरु वशिष्ठ द्वारा समझाया जाना और राम द्वारा भरत की कीर्ति का बखान करना आदि का अत्यन्त मनोहारी चित्रण किया है।

व्याख्या-दुःख, प्रेम, बिनती, नीति से सनीं हुई भरत की श्रेष्ठवाणी को सुनकर सभी लोग व्याकुल हो गये। सारी सभा शोक में ऐसी मग्न हो गई मानो कमल वन पर पाला पड़ गया हो। ज्ञानी मुनि वसिष्ठ ने पुरानी कथाएं कहकर भरत को समझाया। सूर्य कुलरूपी कुमुद वन के चन्द्र रघुनन्दन राव उचित वचन बोले अथवा समय के अनुकूल बचन कहने लगे।

हे तात ! जीव की गति ईश्वर के अधीन जानकर भी तुम अपने हृदय में ग्लानि करते हो। मेरे मन में तीनों काल-भूत, भविष्य वर्तमान तथा तीनों भुवनों अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल-के पुण्यात्मा भी तुम्हारे नीचे हैं। इस पर भी तुम अपने मन में कुटिलता का भाव लाते हो या व्यर्थ की बाते मन में सोचते हो। इस प्रकार की बातों से लोक और परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। जो माता को दोष देते हैं, वे मूर्ख हैं और उन्होंने गुरु और साधु समाज का सेवन नहीं किया। जो तुम्हारे नाम का स्मरण करेगा उसके समस्त पाप, प्रपंच और समस्त अमंगल समूह मिट जाएँगे तथा इस लोक में सुयश और परलोक में सुख प्राप्त होगा।

विशेष-(1) यहाँ पर नाम का माहात्म्य बताते हुए भरत के चरित्र को अत्यन्त पवित्र माना गया है।

(2) पौराणिक कथों की भांति यहाँ पर नामस्मरण करने के फल का निर्देश किया गया है।

(3) इसमें अनुप्रास, रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकार हैं।

अवतरण (v) **बोरति ज्ञान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे।।**
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुवर कर भंगा।।
विषम विषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा।।
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा।।
बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हियँ हारे।।
आस्त्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई।।
सोंक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ज्ञानु न धीरजु लाजा।।
भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही।।

छं०- अवगहि सोक समुद्र सोचहिं नारि नर व्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कान्हो कहा।।
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की।।

सो०- किए अमित उपदेस जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह।
धीरजु धरिअ नरेस कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत काव्य अंश में गोस्वामी तुलसीदास जी ने ज्ञान एवं वैराग्य का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। ऐसा वर्णन सामान्य कवि के वस की बात नहीं है।

व्याख्या-राम के आश्रम रूपी समुद्र की ओर बढ़ता जनक-समाज करुणा रूपी नदी इतनी वेग से बह रही है कि यह ज्ञान वैराग्य सभी किनारों को डुबाती जाती है। शोक भरे हुए वचन रूपी नदी और नाले इसमें मिलते जाते हैं। शोक तथा लम्बी ऊर्ध्व साँसें ही वायु के झकोरों से उठने वाली लहरें हैं जो धैर्य रूपी तट के बड़े-बड़े वृक्षों को गिराती जाती हैं। कठिन दुःख ही तेज धारा है। भय-भ्रम, अगणित भँवर और उसके चक्कर हैं। विद्धानगण ही केवट हैं तथा उनकी विद्या ही बड़ी नाव है। वे इसको अन्दाजा न लगा पाने के कारण खे नहीं पा रहे हैं (भाव यह है कि वे अपनी विद्या का उपयोग नहीं कर पा रहे हैं)।

वन में विचरण करने वाले बेचारे कोल किरात ही यात्री हैं, जो उस नदी को देखकर हृदय में हारकर थक गए हैं। यह करुणा रूपी नदी जब आश्रम रूपी समुद्र में जाकर मिली तो मानो सारा समुद्र ही व्याकुल हो उठा। दोनों पक्ष (अयोध्या और मिथिला) के राज समाज शोक से व्याकुल हो गए। न किसी को धैर्य रहा न ज्ञान रहा और न लज्जा रही। (भाव यह है कि न तो छोटे-बड़े का ज्ञान रहा, विलाप करने के कारण वस्त्र आदि नहीं संभाल पाने के कारण लज्जा और लगातार रोते जाना ही धैर्य का छूटना है।) सब लोग राजा दशरथ के रूप, गुण और शील की सराहना करने लगे तथा रो-रोकर शोक रूपी सागर में डूबने लगे।

सभी नर-नारी शोक रूपी समुद्र में डुबकी लगाते हुए बहुत दुःखी होकर सोच (चिन्ता) क
रहे हैं। वे सब विधाता को दोष देखकर क्रोध सहित कहते हैं कि वाम विधाता ने यह क्या कि
अथवा गजब ढा दिया। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि देवता, सिद्ध, तपस्वी, योगीज
मुनियों में से कोई भी ऐसा समर्थ नहीं है जो विदेह राजा जनक की दशा देखकर प्रेम रूपी न
को पार कर सके। श्रेष्ठ मुनियों ने जहाँ-तहाँ लोगों को अगणित उपदेश दिये तब वसिष्ठ जी ने
राजा जनक से कहा कि आप धैर्य धारण कीजिए।

विशेष- (1)**अलंकार**-अनुप्रास, रूपक तथा उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग कवि
किया है।

(2) करुण रस का सुन्दर प्रयोग है।

(3) करुण रूपी नदी में ज्ञान एवं वैराग्य को दो किनारे के रूप में सम्बोधित किया गया है

अवतरण (vi) **तापस बेष जनक सिय देखी। भएउ प्रेमु परितोषु बिसेषी।।**
पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ।
जिमि सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी।।
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। येहि किये साधु समाज घनेरे।।
पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सीय सकुच महुँ मनहुँ समानी।।
पुन पितु मातु लीन्हि उर लाई। सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई।।
कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनी भल नाहीं।।
लखि रुखु रानि जनाएउ गाऊ। हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ।।
दोहा० : बारबार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्हि सनमानि।
कही समय सिर भरत गति रानि सुबानि सयानि।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत काव्य अंश में चित्रकूट में सीता के वल्कल वस्त्रों के देखकर महार
जनक और उनकी रानी सुनयना ने सन्तोष व्यक्त किया और मर्यादा के अनुरूप बताया है
सीता के यश की चहुँ ओर चर्चा हो रही है।

व्याख्या-सीता जी को तपस्विनी वेष में देखकर जनक जी को विशेष प्रेम और संत
हुआ। बेटी ! तूने दोनों कुल पवित्र कर दिये। तेरे निर्मल यश से सारा जगत् उज्ज्वल हो रहा
ऐसा सब कोई कहते हैं। तेरी कीर्तिरूपी नदी देवनदी गंगा जी को भी जीतकर करोड़ों ब्रह्माण्ड
बह चली है। गंगा जी ने तो पृथ्वी पर तीन ही स्थानों को बड़ा बनाया है पर तेरी इस कीर्ति न
ने तो अनेकों संतसमाज रूपी तीर्थस्थान बना दिये हैं। पिता जनक जी ने तो स्नेह से सच्ची सु
वाणी कही परन्तु अपनी बढ़ाई सुनकर सीता जी मानो संकोच से समा गई। पिता-माता ने उ
फिर हृदय से लगा लिया और हितभरी सुन्दर सीख और आशीष दी। सीता जी कुछ कहती न
हैं, परन्तु मन में सकुचा रही हैं कि रात्रि में यहाँ रहना अच्छा नहीं है। रानी सुनयना जी ने जान
जी का रुख देखकर राजा जनक जी को बता दिया तब दोनों अपने हृदयों में सीता जी के शी
और स्वभाव की सराहना करने लगे।

राजा रानी ने बार-बार मिलकर और हृदय से लगाकर तथा सम्मान करके सीता जी
विदा किया। चतुर रानी ने समय पाकर राजा से सुन्दर वाणी में भरत की दशा का वर्णन कि

विशेष-1.तुलसी ने स्त्रियोचित गुण का सुन्दर वर्णन किया है।

2.माता-पिता का संतान के प्रति प्रेम का सुन्दर वर्णन हुआ है।

अवतरण (vii) **बिहरत अवध-बीथिन राम।**
संग अनुज अनेक सिसु, नव नील नीरद स्याम।
तरुन अरुन सरोज पद बनी कनकमय पदत्रान।
पीत कटि तून बर, कर ललित लघु धनु बान।
लोचननि को लहत फल छबि निरखि पुर-नर-नारि।
बसत तुलसीदास उर अवधेस के सुत चारि।

सन्दर्भ-प्रस्तुत काव्यांश गोस्वामी तुलसीकृत 'गीतावली' के बाल काव्य से उद्धृत किया गया

प्रसंग-प्रस्तुत काव्य में तुलसीदास ने राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के बाल्यावस्था
विहार तथा उनके रूप सौन्दर्य का अत्यन्त उत्कृष्ट चित्रण किया है।

व्याख्या-अवधपुरी की गलियों में राम अपने अनुजों के साथ बाल्यावस्था में वि
कर रहे हैं। उनके साथ अयोध्या के बच्चों की एक टोली भी है अर्थात् नये नीले और श्या

बादलों की भाँति राम अपने भाइयों तथा अन्य बच्चों के साथ अयोध्या की गलियों में घूम रहे हैं। छोटे सूर्य सदृश्य अथवा सूर्यवंशी राम के कमल की भाँति कोमल पैरों में सोने की पनही विराजमान है। कमर में पीला वस्त्र तथा गले में सूनी वस्त्र और हाथ से छोटा-सा धनुष बाण सुशोभित हो रहा है। नगरवासी उनकी इस शोभा को देखकर नेत्रों के फल को प्राप्त कर रहे हैं। सुन्दरता को नेत्रों का फल कहा गया है। तुलसीदास जी कहते है कि हृदय में दशरथ के चारों पुत्र निवास करें।

विशेष- उपमा अलंकार का मनोरम चित्रण है।

अवतरण (viii)

कुल, करतूति भूति कीरति, सुरूप गुन,
जोबन जरत जुर परै न कछू कहौं।
राजकाज कुपथ कुसाज भोग रोगही के,
बेद-बधु बिद्या पाई बिबस बलकही।।
गति तुलसी की लखै न कोऊ जो करत,
पब्बइ तें छार, छारै पब्बइ पलक ही।
कासों कीजै रोष? दोष दीजै काहि? पाहि राम !
कियो कलिकाल कुलि खलल खलक हो।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत काव्य खण्ड गोस्वामी तुलसी दास द्वारा विरचित 'कवितावली' से अवतीर्ण किया गया है।

प्रसंग-प्रस्तुत पद में गोस्वामी तुलसीदास जी ने कलियुग से हुई त्रस्त अस्तव्यस्त दशा का चित्रण किया है।

व्याख्या-हे प्रभो ! युवावस्था रूपी ज्वर में अर्थात् यौवन रूपी ज्वर के आवेग में कुल की मर्यादा, शुभ कार्य, ऐश्वर्य-वैभव, यश, स्वरूप एवं गुण-सभी दग्ध हो रहे हैं-कहने का आशय यह है कि लोग युवावस्था में आवेग में औचित्यानौचित्य विचारों के अभाव में तथा बुद्धि की परिपक्वाता के अभाव में सब कुछ त्यागकर बैठते हैं जिसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता है। आगे आने वाले समय में क्या दशा होगी-इसके विषय में भी सुनिश्चित रूप से कुछ कह सकना सम्भव नहीं होता। इस युवावस्था रूपी ज्वर के उद्दाम वेग मे राज-काज कुपथ्य के रूप में होता है अर्थात् ज्वर में बद-परहेजी हानिकारक होती है उसी प्रकार बुरी सामग्री का भोग करना ज्वर की वृद्धि में सहायक ही होता है। कुसामग्री के उपभोग से ज्वर बढ़ता है-घटता नहीं। वेद पाठी विद्वज्जन भी विद्या प्राप्त कर विवश होकर अनर्गल प्रलाप करना आरम्भ कर देते हैं। जिस प्रकार बात, पित्त एवं कफ के आधिक्य एवं संयोग से त्रिदोष ज्वर होता है उसी प्रकार यौवन, अधिकारोपभोग एवं विद्या-इन तीनों की प्राप्ति होने के परिणामस्वरूप त्रिदोष ज्वर ग्रस्त व्यक्ति की दशानुरूप ही उनकी दशा हो जाती है। इस संसार में तुलसी के स्वामी रामचन्द्र की गति को कोई देखने में समर्थ नहीं हो पाता है। श्रीरामचन्द्र क्षणमात्र में पर्वत को राख तथा राख को पर्वत बना देते हैं-"राई से कोह कर दे-खाली को दम में भर दे जिस पर रजा हो तेरी।।" इसलिए हे राम ! मैं किससे कुपित होऊं और किसे दोष दूं। आप मेरी रक्षा कीजिए। यह तो समूचा प्रभाव कलियुग का ही है-उसी ने समूचे संसार की ऐसी बुरी दशा कर दी है-जिसमें सर्वत्र अस्तव्यस्तता दृष्टिगोचर हो रही है।

विशेष-(1) कलियुग के प्रभाव से आक्रान्त प्राणियों की दशा का चित्रण हुआ है।
(2) अलंकार-रूपक।

अवतरण (ix)

केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत।।
सम सुबरन सुषमाकर सुखद न थोर।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर।।
सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह निसिदिन यह बिगसाइ।।
गरब करहु रघुनन्दन जनि मन माँह।
देखहु आपनि मूरति सिय के छाँह।।
कनक सलाक, कला ससि, दीपसिखाड।
तारा सिय कहँ लछिमन मोंहि बताउ।।

सन्दर्भ—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक गोस्वामी तुलसीदास कृत 'बरवै रामायण' के 'बालकाण्ड' से उद्धृत किया गया है।

व्याख्या—श्रीराम रूप का वर्णन करने के अनन्तर अब भी जानकी जी के रूप का वर्णन करते हैं। जनकपुर की स्त्रियाँ परस्पर कह रही हैं सखी! (श्री जनक कुमारी के) केशों में गूँथे जाने पर (उनके नीले रंग की झाई पड़ने से) मोती मरकत मणि (पन्ने) के बने हुए (हरे) प्रतीत होते हैं, किन्तु फिर हाथ में लिये जाने पर वे श्वेत आभा बिखेरने लगते हैं।

यहाँ जनकपुर की स्त्रियाँ आपस में सीताजी के सौन्दर्य के विषय में कहती हैं हे सखी! स्वर्ण शोभा (कान्ति) में तो श्री जानकी के श्री अंगों के समान है, किन्तु उनकी तुलना में थोड़ा भी सुखदायी (शीतल) नहीं है और श्री जानकी के अंग कोमल एवं मनोरम हैं, पर स्वर्ण कठोर है। श्री सीता जी का मुख शरद-ऋतु के कमल के समान कैसे कहा जाय, क्योंकि वह (कमल) तो रात्रि में ग्लान होता है, किन्तु यह (श्री मुख) रात-दिन (समान रूप से) प्रफुल्लित रहता है। विवाह के अनन्तर सखियाँ श्रीराम जी से विनोद करती हुई कहती हैं रघुनन्दन तुम अपने मन में (अपने सौन्दर्य का) गर्व मत करो। तुम्हारी मूर्ति (साँवली होने के कारण) श्री जानकी जी की छाया के समान है, यह देख लो।"

(जानकी-हरण के पश्चात्) श्रीराम कहते हैं-'लक्ष्मण! सोने की शलाका, चन्द्रमा की कला, 'दीपक की शिखा अथवा नक्षत्र के समान (ज्योतिर्मयी) सीता कहाँ है। मुझे यह बात कहो।

अवतरण (x) **पौढ़िये लालन, पालनें हौं झुलावौ।**
कर पद मुख चख कमल लसत लखि लोचन भंवँर भुलावौं।।
बाल-विनोद मोद मंजुलमनि किलकनि खान खुलावौं।
तइ अनुराग ताग गूहिबे कहँ मति मृग नयनि बुलावौं।
तुलसी भनित भली भमिनि उर सो पहिराइ फुलावौं।
चारु चरित रघुबर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चितु लावौं।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत अवतरण गोस्वामी तुलसीदास द्वारा विराचित 'गीतावली' से उद्धृत है। 'गीतावाली' को भी तुलसी दास जी ने 'मानस' की भाँति काण्डों में विभक्त किया है। यह पद बाल काण्ड से अवर्तीण किया गया है।

प्रसंग-प्रस्तुत पद में माता कौशिल्या ने भगवान् राम से चतुर्भुज रूप त्याग कर बाल रूप धारण करने को निवेदन किया है। वह कहती हैं जब आप बाल रूप धारण करेंगे तो मैं आप को पलने में झूला झुलाऊँगी।

व्याख्या-माता कौशिल्या कहती हैं कि हे लाल तुम पालने में सो जाओ या लेट जाओ मैं तुम्हें झुलाऊँ-तुम्हारे कर, चरण, मुख और नेत्ररूपी कमनीय कमलों को निहारकर या देखकर मैं अपने नयनरूप भ्रमरों को भुलाऊँ। तुम्हारे बालकेलि के आनन्दरूप मञ्जुल मणि मनोहर माला को कवितारूपी कमनीय कामिनी के कण्ठ में पहनाकर मैं प्रफुल्लित होऊँ, और हे रघु श्रेष्ठ मैं उस कविता कामिनी के साथ मिलकर तुम्हारे ही चरणों में चित्त लागाऊँ।

विशेष-(1) भगवान् श्रीराम के अवतार के समय से ही अयोध्या नूतन बन पड़ी थी। यहाँ माँ के वात्सल्य रूप का निदर्शन दिखाई पड़ता है। (2) झूला झुलाना, उस अजन्मा को जो समस्त सृष्टि का नायक है। (3) भक्ति का अनन्य स्वरूप परिलक्षित होता है। (4) रूपक अलंकार का उत्तम सौन्दर्य है।

अवतरण (xi) **भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ।।**
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे।।
ज्यों मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी। गहि न जाइ अस अदभुत बानी।।
भूपु भरतु मुनि साधु समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग- भरत-वाणी की राजा जनक अति प्रशंसा करते हैं। रूपक शैली में जनक, भरत एवं वशिष्ठ का चित्रण होता है।

व्याख्या- कवि का कथन है कि भरतजी की अत्यंत प्रिय आदर्शयुक्त वाणी सुनकर उनका सरल स्वभाव जानकर समाज के साथ महाराज जनक उनकी प्रशंसा करने लगे। भरत वचन की विशेषता यह है कि वे सुगम, अगम, सुन्दर, कोमल एवं कठोर हैं। अक्षर तो उसके नाम मात्र के ही हैं, किन्तु अर्थ उनमें अपार भरे हुए हैं। आगे कवि कहता है कि जैसे मुख के

प्रतिबिम्ब दर्पण में दिखा
प्रतिबिम्ब पकड़ा नहीं जा
आती। कहने का भाव यह
उत्तर देने में समर्थ न हुआ
जहाँ देवता रूपी कुमुदों

विशेष- रूपक शैल
भाषा में प्रवाह है।

अवतरण (i)

सन्दर्भ एवं प्रसंग—
अवतरित है। सावन में प्रि
व्याख्या—सावन में
खेती के योग्य पानी के भरा
लग गया लेकिन अभी तक
होती जा रही हूँ, मेरे चतुर,
हो गया है लेकिन ऐसा प्रती
ने उस नक्षत्र को देख लिया
में कान्त (पति) के बिना स्त्र
समझकर मेरी व्यथा का अ
टपक-टपक कर पृथ्वी पर
मेरी सखियों ने अपने-अपने
ओर हरियाली छा रही है, स
साथ झूला झूलते देखकर मे
झकझोर कर इधर-उधर झु
हुआ है, रास्ता सूझता नहीं।
चक्कर काट रहा है। जहाँ त
जीवन नैया बिना मल्लाह के
इस अथाह जल में कैसे पार

अवतरण (ii)

सन्दर्भ एवं प्रसंग-प्र
अवतरित है। इसमें भादों में
व्याख्या—नागमती क
किस प्रकार व्यतीत करूँ

प्रतिबिम्ब दर्पण में दिखाई पड़ता है और शीशा अपने कर में, परन्तु फिर भी वह मुख का प्रतिबिम्ब पकड़ा नहीं जा सकता ठीक इसी प्रकार भरत जी की यह अनुपम वाणी पकड़ में नहीं आती। कहने का भाव यह है कि उसका आशय समझ में नहीं आता। जब कोई किसी प्रकार से उत्तर देने में समर्थ न हुआ तब राजा जनक जी, भरत जी तथा वशिष्ठ जी समाज सहित वहाँ गये जहाँ देवता रूपी कुमुदों को खिलाने वाले चन्द्र स्वरूप श्री रामचन्द्र जी उपस्थित थे।

विशेष- रूपक शैली में भरत, जनक, वशिष्ठ एवं राम की महत्ता प्रतिपादित की गयी है। भाषा में प्रवाह है।

(5) मलिक मुहम्मद जायसी

अवतरण (i)

सावन बरसि मेह अतिपानी। भरनि भरइ हौं बिरह झुरानी।।
लागु पुनर्वसु पीउ न देखा। भै बाउर कहँ कंत सरेखा।।
रकत क आँसु परै भुइँ टूटी। रेंगि चली जनु बीर बहूटी।।
सखिन्ह रचना पिउ संग हिंडोला। हरियरि भूमि कुसुँभि तन चोला।।
हिय हिंडोल नस डोलै मोरा। बिरह झुलावै देइ झकोरा।।
बाट असूझ थाह गँभीरी। जिउ बाउर भा भवँ भँभीरी।।
जग जल बूड़ि जहाँ लगि ताकी। मोर नाव खेवक बिनु थाकी।।
परबत समुद्र अगम बिच, बन बेहड़ धन ढंख।
किमि करि भेटौ कंत तोहि, ना मोहि पाँव न पंख।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण जायसी के 'पद्मावत' के नागमति वियोग खण्ड से अवतरित है। सावन में प्रिय के न आने से नागमती का विरह बढ़ जाता है।

व्याख्या—सावन में घनघोर जल-वर्षा हो रही है। मूसलाधार वर्षा के कारण खेतों में धान की खेती के योग्य पानी के भरान भर गये हैं किन्तु मैं विरह ताप के कारण सूखी जा रही हूँ। पुनर्वसु नक्षत्र लग गया लेकिन अभी तक मैं अपने प्रियतम का दर्शन नहीं कर पायी। मैं विरह की पीड़ा में बदली होती जा रही हूँ, मेरे चतुर, ज्ञानी, समझदार स्वामी कहाँ हैं। आशय यह है कि पुनर्वसु नक्षत्र उदय हो गया है लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे कान्त ने उसे देखा नहीं या देख नहीं पाया। यदि स्वामी ने उस नक्षत्र को देख लिया होता, तो वे ज्ञानी और समझदार हैं तुरन्त जान जाते कि सावन के महीने में कान्त (पति) के बिना स्त्री की काम और विरह कितनी उद्दीप्त होती है। परिणामतः इस संकेत को समझकर मेरी व्यथा का अनुमान लगाकर वह तुरन्त ही घर लौट आते। मेरे नेत्रों से रक्त के आँसू टपक-टपक कर पृथ्वी पर गिर रहे हैं जो ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वीर बहुटियाँ जमीन पर रेंग रही हों। मेरी सखियों ने अपने-अपने पतियों के साथ हिंडोले डालकर झूलना शुरू कर दिया। पृथ्वी पर चारों ओर हरियाली छा रही है, सखियों ने कुसुम्भी रंग के वस्त्र धारण कर रखे हैं। उनको अपने कान्त के साथ झूला झूलते देखकर मेरा हृदय हिंडोले के समान चलायमान हो रहा है। विरह मेरे हृदय को झकझोर कर इधर-उधर झुला रहा है। मार्ग दिखायी नहीं पड़ता, चारों ओर अथाह गहरा जल भरा हुआ है, रास्ता सूझता नहीं। मेरा मन पागल और विक्षिप्त हो भँमीरी मक्खी के समान इधर-उधर चक्कर काट रहा है। जहाँ तक दृष्टि जाती है, सारा संसार जल में डूबा दिखाई पड़ता है। ऐसे में मेरी जीवन नैया बिना मल्लाह के खेने वाले के समान थक गयी अर्थात् मुझे यह नहीं सूझता कि मेरी नैया इस अथाह जल में कैसे पार लगेगी।

अवतरण (ii)

भा भादौं दूभर अति भारी। कैसे भरौ रैनि अँधियारी।।
मँदिल सून पिउ अनतैं बसा। सेज नाग मैं धैधे डसा।।
रहौं अकेलि गहे एक पाटी। नैन पसारि मरौं हिय फाटी।।
चमक बीजु घन गरजि तरासा। बिरह काल होई जीउ गएसा।।
बरसै मघा झकोरि झकोरी। मोर दुइनैन चुवहि जस ओरी।।
पुरवा लाग पुहुमिजल पूरी। आक जवास भई हौ झूरी।।
धनि सूखी भरे भादौं माहाँ। अबहूँ आइ न सींचसि नाहाँ।।
जल थल भरे अपूरि सब, गगन धरति मिलि एक।
धन जोबन अँगाह हैं, दे बूड़त पिय टेक।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग-प्रस्तुत अवतरण जायसी के 'पद्मावत' के 'नागमती वियोग' खण्ड से अवतरित है। इसमें भादौं में अनुभव होने वाली नागमती की विरह कथा का वर्णन किया गया है।

व्याख्या—नागमती कहती है कि भादौं मेरे लिए अत्यधिक दूभर रहा है। उसकी अँधेरी रातें किस प्रकार व्यतीत करूँ अर्थात् अँधेरी रातें कैसे पूरी करूँ? मेरा मंदिर सूना है, क्योंकि प्रिय

अन्यत्र निवास करता है। मेरी शैय्या नागिन हो कर पकड़-पकड़कर डँसती है। एक पाटी पकड़े मैं अकेली पड़ी रहती हूँ। नेत्र फैलाये मैं हृदय फटने से मरी जा रही हूँ। बिजली चमककर और मेघ गरज कर मुझे डराते हैं। बिरह काल मेरे जीवन को डँसता है। मेघा नक्षत्र इस समय झकोर के साथ बरसता है। मेरे नेत्र इस प्रकार आँसू गिराते हैं जैसे छप्पर की ओरी टपकती है। पति के विरह के कारण मेरे दोनों नेत्रों से ऐसे आँसू झरते हैं जैसे वर्षा का जल धारा बाँधकर झरता है। मेघा के बाद पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र लग गया और धरती जल से भर गई। मैं सूखकर ऐसी हो गई जैसे वर्षा में आक और जवास बिना पत्ते के हो जाते हैं। भादौं के महीने में तुम्हारी पत्नी सूख रही है। हे स्वामी। अब भी आकर उसे क्यों नहीं सींचते?

जल और स्थल सभी पूरे होकर जल से भर गये हैं और आकाश तथा धरती जल से मिलकर एक हो रहे हैं। हे प्रिय! इस यौवन के के गंभीर जल में डूबती हुई स्त्री को तू अब भी अवलम्ब दे।

अवतरण- (iii)

लाग कुवार नीर जग घटा। अबहुँ आउ पिउ परभुमि लटा।
तोहिं देखे पिउ पलुहै काया। उतरा चित्त बहुरि करु माया।
उए अगस्ति हस्ति घन गाजा। तुरै पलानि चढ़े रन राजा।
चित्रा मीत मीन घर आवा। कोकिल पीउ पुकारत पावा।
स्वाति बुंद चातिक मुख परे। सीप समुंद मोंति सब भरे।
सरवर सँवरि हंस चलि आए। सारस कुरुरहिं खँजन देखाए।
भए बिगास काँस बन फूले। कंत न फिरे बिदेसहिं भूले।
बिरह हस्ति तन साले खाड़ करै तन चूर।
बेगि आइ पिय बाजहु गाजहु होइ सुदूर।।

संदर्भ एवं प्रसंग- प्रस्तुत पद जायसी द्वारा रचित पद्मावत के नागमती वियोग खण्ड से उद्धृत है। बारहमासा वर्णन के अन्तर्गत आश्विन मास का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि-

व्याख्या- क्वार का महीना भी अब लग गया (भादों का) जल संसार में घटकर कम होने लगा है अर्थात् मार्ग आवागमन के उपयुक्त हो चुका है पर भूमि अर्थात् परदेश पर लुब्ध हे प्रिय! तू अब तो आ जा। मेरी यह काया तुझे देखकर ही पल्लवित हो सकेगी। यद्यपि तेरा हृदय (किसी अन्य के प्रति आसक्त होने के कारण) मुझसे अलग हो गया है तथापि मेरी विरहावस्था पर दया कर और पुनः लौट आ। अगस्त तारे के उदित होते ही आकाश में हस्ति नक्षत्र के बादल गरजने लगे हैं। घोड़ों पर जीन कस कर राजा अपने शत्रु राजाओं पर चढ़ाई करने के लिए युद्ध की तैयारी करने लगे हैं चित्रा नक्षत्र का सूर्य अब मीन राशि के घर में आ चुका है, यही नहीं कोकिला और पपीहा भी अपना अभीष्ट प्राप्त करने लगे हैं। स्वाती नक्षत्र की बूँद चातक के मुख में पड़ गयी और समुद्र में स्थित सभी सीपियों में मोतियों की राशि भर उठी है। जलाशयों का पुनः स्मरण कर हंस भी वापस आ गये हैं और उनके साथ सारस पक्षी भी कलरव करने लगे हैं तथा खंजन पक्षी भी अब पुनः दिखाई पड़ने लगे हैं। सूर्य का प्रकाश होने के कारण काँस भी फूल उठे हैं किन्तु विदेश में भूला हे प्रिय तू अब भी वापस लौटकर नहीं आया। विरह रूपी हाथी मुझ विरहिणी के शरीर को पीड़ा दे रहा है और उसे खा-खाकर टुकड़े किये दे रहा है इसलिए हे प्रिय! तुम सिंह की भाँति गर्जना करो और शीघ्र ही यहाँ आकर उससे युद्ध करो जिससे मेरी रक्षा हो सके।

विशेष- वृत्यनुप्रास, श्लेष, रूपक एवं मुद्रालंकार की सुन्दर योजना है छन्द में उत्तरा फाल्गुनी चित्रा, हस्त और स्वाती आदि नक्षत्रों का उल्लेख हुआ है।

अवतरण (iv)

कातिक सरद चंद उजियारी। जग सीतल हौं बिरहै जारी।।
चौदह करा कीन्ह परगासू। जनहुँ जरै सब धरति अकासू।।
तन मन सेज करै अगिदाहू। सब कहँ चांद भएउ मोंहि राहू।।
चहू खण्ड लागै अँधियारा। जौ घर नाहिन कंत पियारा।।
अबहूँ निठुर आव एहि बारा। परब देवारी होइ संसारा।।
सखि झूमक गवै अंग मोरी। हौं झूरी बिछुरी जेहि जोरी।।
जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूरा। मों कहँ बिरह सवति दुख दूजा।।
सखि मानहिं तेवहार सब गाइ देवारी खेलि।
हौं का खेलौं कंत बिनु रही छार सिर मेलि।।

सन्दर्भ- प्रस्तुत चौपाइयाँ जायसी रचित पद्मावत के 'नागमती वियोग' खण्ड से उद्धृत हैं।

प्रसंग— शरद ऋतु की मनोहर चाँदनी नागमती के वियोग दुःख को उद्दीप्त कर रही है। वह पागलों की भाँति प्रलाप करती हुई पति को बुला रही है।

व्याख्या—रानी नागमती कहती है कि कार्तिक का महीना आ रहा है। चन्द्रमा की चाँदनी से चारों ओर प्रकाश फैल रहा है। सारा संसार शीतल हो रहा है लेकिन रानी नागमती विरह से जल रही है। चन्द्रमा अपने चौदहों कला से प्रकाशमान है लेकिन रानी नागमती विरह से रानी धरती तथा आकाश जल रहा है। इस चाँदनी रात में मेरी सेज मेरे तन-मन को आग के समान दग्ध रही है अर्थात् शैय्या के स्पर्श करते ही मेरा तन-बदन जलने लगता है। कामदेव का प्रहार आरम्भ हो जाता है यह चन्द्रमा भले ही दूसरों के लिए शीतलता प्रदान करने वाला हो, लेकिन मेरे लिए तो यह राहु के रूप में है। जब तक (पति प्यारा) घर में नहीं रहता है तो उसके लिए सारा संसार ही अँधियारा लगता है। जब पति घर में आता है तो उसके प्यार में चारों ओर दीवाली का पर्व मनाया जा रहा है। निपूर तू अब भी घर लौट आ, कारण कि इस घर में झूमक गीत गा रही है लेकिन नींव मेरी जारी नहीं है। ऐसे समय में सोलहों अंग मरोड़-मरोड़ कर रो रही हूँ। यहाँ पर मनोरा त्यौहार मनाया जाता है। मैं तो विरह के दुःख से दुःखी हूँ और मेरी समस्त सखियाँ दीवाली के त्यौहार को मना रही हैं और गा-गाकर दीवाली पर खेल (द्यूत क्रीड़ा) कर रही हैं। मैं बिना पति के क्या खेलूँ। इसी कारण अपने सिर पर राख लगाकर रह रही हूँ। आशय है कि रानी पति अभाव में नितान्त दुःखी है।

अवतरण

फागुन पवन झकोरा बहा। चौगुन सीउ जाइ नहिं सहा।।
तन जस पियर पात भा मोरा। बिरह न रहै पवन होइ झोरा।।
तरिवर झरै झरै बन डाँखा। भइ आनंद फूलि फरि साखा।।
करिन्ह बनाफति कीन्ह हुलासू। मो कहँ भा जग दून उदासू।।
फाग करहिं सब चाँचरि जोरी। मोहि जिय लावर लेकै जरम होरी।।
जौ पै पियहि जरत अंसपावा। जरत मरत मोहि रोस न आवा।।
रातिहु देवस इहै मन मोरे। लागी कंत छार जेई तोरे।।
यह तन जारौं छार के, कहौं कि पवन उड़ाव।।
मकु तेहि मारग होइ परौं कंत धरै जहँ पाँव।।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण जायसी ग्रंथ के नागमती विरह से अवतरित है। नागमती का विरह वर्णन फाल्गुन महीने के माध्यम किया गया है।

व्याख्या—माघ महीने की समाप्ति और फाल्गुन महीने के लगने पर तेज ठंडी हवा के झोंके चलने लगते हैं जिससे रानी नागमती व्याकुल हो उठी। अपनी उसी विरह व्यथा का वर्णन [illegible] है तो असह्य होती है, इस चौगुनी शीत को किस प्रकार सहा जाए। मेरा शरीर पत्ते के समान पीला पड़ गया है। उस पर भी विरह उसे निरन्तर झकझोरता रहता है। जिस प्रकार फाल्गुन में हवा वृक्ष के पीले पत्तों को झकझोर कर कहीं समाप्त न कर डाले। तरुवरों के पत्ते तथा पलाश वन में खड़े पलाश जैसे सामान्य वृक्षों के पत्ते भी झड़ रहे हैं। परिणामस्वरूप फूलों और फलों की दुर्दशा [illegible] हो गई है। [illegible] के समान वनस्पतियों में अन्तर आ गया है उनके उल्लास के प्रतीक नव पल्लव निकल आये हैं किन्तु मेरे लिए तो यह संसार और भी अधिक उदास और नीरस हो गया है। मेरी सखियाँ चाचरी नृत्य और फाग के गीत गाकर आनन्द और खुशियाँ मना रही हैं लेकिन यह आनन्दोत्सव देखकर मेरे हृदय में विरह की आग इस प्रकार धू-धूकर जल उठती है मानो मेरे शरीर के भीतर ही-ही जल रही हो। यदि ऐसे समय में स्वामी आ जाते और मुझे इस प्रकार दग्ध होता दुःख सुख तथा साथ ही उन्हें इसका एहसास हो जाता कि उनके बिना हमारी क्या दशा हो रही है।

अवतरण—

चैत बसंता होइ धमारी। मोहिं लेखे संसार उजारी।
पंचम बिरह पंच सर मारे। रकत राइ सगरौ बन ढारे।
बूड़ि उठे सब तरिवर पाता। भीजि मँजीठ टेसू बन राता।
मोर आब फरे अब लागे। अबहुँ संवरि घर आउ सभागे।
सहस भाउ फूली बनफली। मधुकर फिरे संवरि मालती।
जो कहँ फूल भए जस काँटे। दिसि पर तन लागहिं चाँटे।
भर जोबन एहु नारंग साखा। सुवा बिरह अब जाइ न राखा।
धरि धोवा आव जम आइ घरह पिउ दूटि।
जागि रकाएँ हाथ है तुम्ह [illegible] न छूटि।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत अवतरण में चैत में होनी वाली नागमती की विरहानुभूति का वर्णन है।

व्याख्या-चैत में बसन्त की धूमधाम है, परन्तु मेरे लिए संसार उजाड़ है। कोयल पंचम राग गाकर काम के पाँच बाण मारती है और रक्त के आँसू रोकर वन में बहाती है। उन आँसुओं में डूब कर वृक्षों के नये पत्ते ताम्र वर्ण के हो गये हैं। मंजीठ भी उनसे भीग गया है और वन के टेसू उनसे लाल हो गया है। बौरे हुए आम फलने लगे हैं। नागमती कहती है कि-हे सौभाग्यशाली कंत ! अब तो घर लौट आओ। भाव यह है कि इस मास में वृक्ष भी फलवान हो उठे हैं, एक मैं ही अभागिनी हूँ जिसकी मनोकामना फलवती नहीं हो रही है। तुम आकर उसे अब तो फलवती बना दो। वनस्पतियाँ सहस्त्रों रूपों में फैली हुई हैं। भौंरे मालती का स्मरण करके घूम रहे हैं। शाखाओं पर खिले हुए फूल मेरे लिए काँटे बन गए हैं। इनको देखते ही शरीर में चोट से लगने हैं। नारंग वृक्ष की शाखाओं में यौवन फल गया है। भाव यह है कि शरीर लता नारंग वृक्ष के समान है और दो कुच उसमें लगे हुए नारंगी के फल हैं।

जिस प्रकार घिरिन परेवा (आकाश से टूटकर) आ जाता है, तुम भी हे प्रिय ! टूटकर आ पड़ो क्योंकि नारी पराए (विरह) के वश में हो रही है और तुम्हारे बिना उस परवशता से छूट नहीं सकती।

अवतरण- (vii)

पूस जाड़ थरथर तन काँपा। सुरुज जड़ाइ लंक दिसि तापा।
बिरह बाढ़ि भा दारुन सीऊ। काँपि काँपि मरौं लेहि हरि जीऊ।
कंत कहाँ हौं लागौं हियरें। पंथ अपार सूझ नहिं नियरें।
सौर सुपेता आवै जूड़ी। जानहुँ सेज हिवंचल बूड़ी।
चकई निसि बिछुरैं दिन मिला। हौं निसि बासर बिरह कोकिला।
रैन अकेलि साथ नहिं सखी। कैसे जिऔं बिछोही पंखी।
बिरह सैचान भँवै तन चाँड़ा। जीयत खाइ मुएँ नहिं छाँड़ा।
रकत ढरा आँसू गरा हाड़ भए सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई आइ समेटहु पंख।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत अवतरण में पूस के महीने में होने वाली नागमती की विरह व्यथा का अत्यन्त हृदयस्पर्शी वर्णन है।

व्याख्या-पौष में जाड़े से शरीर थर-थर काँप रहा है और सूर्य (पति, रतनसेन भी) शीत लगने से (कष्ट पाकर) लंका की दिशा (दक्षिण) में आग ताप रहा है। विरह की वृद्धि से वह शीत और भी दारुण हो गया है (जिसके परिणाम स्वरूप) मैं काँप-काँप कर मर रही हूँ और वे (दोनों शीत और विरह) मेरे जीव को हर ले रहे हैं। मेरे स्वामी न जाने कहाँ हैं, यदि, वे मेरे पास होते तो मैं उनके गले से चिपटकर मुक्ति पा लेती। उन तक पहुँचने का मार्ग भी अपार है। मुझे तो निकट की भी वस्तु नहीं दिखायी पड़ती है। शैय्या पर पड़ी उज्ज्वल रजाई देखते ही शीत चढ़ जाती है। ऐसा लगता है, मानों वह शैय्या बर्फ में डूबी हुई हो। आशय यह है कि शैय्या बर्फ के समान ठण्डी लगती है। चकवी रात को बिछुड़ कर दिन में चकवे से मिल पाती है, परन्तु मैं रात-दिन विरह रूपी आग में जलती हुई तथा चकवी बनी हुई पुकार रही हूँ। मैं रात में अकेली रह जाती हूँ, सखी भी साथ में नहीं होती। मैं कैसे जिऊँ जब मेरी जोड़ी का पक्षी बिछुड़ा हुआ है। इस भयानक शीतकाल में विरह मुझे उसी प्रकार सता रहा है जैसे बाज चिड़िया को सताता है। यह शीत रूपी बाज जीते जी तो मुझे खा ही रहा है, लगता है, मरने पर भी नहीं छोड़ेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि बाज जीवित चिड़िया को झपट्टे मार-मारकर उसे व्याकुल कर देता है, और मर जाने पर भी उसे छोड़ता नहीं, बल्कि उसके शरीर को नोंच-नोंचकर खाता है। उसी प्रकार शीत भी नागमती को जीते-जी व्याकुल कर ही रहा है, लगता है, मर जाने पर भी उसका पीछा नहीं छोड़ेगा अर्थात् उसके शरीर को भस्म कर उसके अस्तित्व को भी मिटा देगा।

विरह में नागमती का रक्त आँसू बनकर बह गया, माँस गल गयी, हड्डियाँ सूखकर शंख हो गयी। वह स्त्री सारस की जोड़ी की भाँति रोती हुई मर गई। हे प्रिय अब आकर उसके पंख समेट लो।

विशेष अलंकार- 'विरह-बाढ़ि', 'कंत-कहाँ', 'सौर-सुवेती' 'सब-शंख' में अनुप्रास अलंकार है। 'सौर-सुपेती-बूड़ी' में उत्प्रेक्षा, तथा 'हाड़ भये सब संख' में रूपक अलंकार है।

अवतरण- (viii)

सन्दर्भ-प्रस्तुत अव
प्रसंग-बारह मासा
व्याख्या-वैशाख
और यहाँ तक कि वस्त्र
के लिए ही हिमाचल क
होने से गर्मी और अधिक
छाया कर दो, मैं अंगारों
दर्शन से ही यह स्त्री शी
उसी तरह जल रही हूँ
फुर्सत नहीं मिलती। मेरा
आतप से क्षण प्रतिक्षण
जाती है उसी तरह अब
जाता है। हे प्रिय ! इस
पुनः उस बिखरते हृदय क
इस हृदय रूपी मानस
सूख रहा है, अगर अब भी

अवतरण- (ix)

जैठ
बिरह
चारि
दहि
उठै
अध
माँसु
परबत
मुहम

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद में
नागमती के माध्यम से जाय

व्याख्या-जेठ महीने मे
गर्म हवा चलने लगती है, बव
चारों तरफ धरती पर अंगारों
गरजने लगता है। तथा शरीर
को प्रचंड बना दिया है। मैं वि
के विरह में दग्ध हो काली प
तिलतिल कर जलाती रहती है।
में बँधी हूँ। दुःख में उठने वाली
माँस सूख गया है। शरीर से वि
में माँस को खाने के पश्चात् अ
तुम अब भी आ जाओ। तुम्हार

अवतरण- (viii)

भा बैसाख तपनि अति लागा। चोआ चीर चंदन भौ आगी।।
सुरुज जरत, हिवंचल ताका। विरह-बजागि सौंह रथ हाँका।।
जरत बाजागिनि करू, पिऊ ! आइ छाहाँ।बुझाउ, अंगारन्ह माहाँ।।
तोहि दरसन होई सीतल नारी। आइ आगि ते करु फुलवारी।।
लागिउँ जरै, जरै जस भारू। फिरि-फिरि भूँजेसि तजेउँ न बारू।।
विरहत-हिया घटत निति जाई। जैक-टूक होइ कै बिहबराई।।
हिया करहु, पिउ ! टेका । दीठि दवंगरा मेरवहु एका।।
कँवल जो बिगसा मानसर बिनु जल गयउँ सुखाइ।
कबहुँ बेलि फिरि पलुहै जौं पिउ सींचै आइ।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत अवतरण जायसी द्वार विरचित 'पद्मावत' के नागमती वियोग खण्ड से उदधृत है।

प्रसंग-बारह मासा के अन्तर्गत बैशाख मास में नागमती के विरह का वर्णन किया है।

व्याख्या-वैशाख का महीना आ गया है। गर्मी बहुत अधिक बढ़ गई है। चंदन, चोआ और यहाँ तक कि वस्त्र भी आग का काम करने लगे हैं। सूरज मानों अपनी जलन कम करने के लिए ही हिमाचल की ओर सिधार गया है अर्थात् सूर्य उत्तरायण हो गया है। उत्तरायण होने से गर्मी और अधिक बढ़ गई है।इस स्थिति से विरहह वज्र की अग्नि में जलते हुए मुझे छाया कर दो, मैं अंगारों के मध्य हूँ, आकर इन अंगारों को बुझा दो। तुम्हें देखते ही, तुम्हारे दर्शन से ही यह स्त्री शीतल हो जायगी, तुम आकर इस आग को फुलवारी में बदल दो। मैं उसी तरह जल रही हूँ जैसे भार का बालू बार-बार जलाया जाता है किन्तु उसे जलने से फुर्सत नहीं मिलती। मेरा हृदय एक सरोवर की भाँति है। इसका रस रूप जल मानों विरह आतप से क्षण प्रतिक्षण घटता जा रहा है। जैसे पानी खतम होने पर तालाब की मिट्टी दरक जाती है उसी तरह अब प्रेम रस के समाप्त होते ही मेरा हृदय टुकड़े-टुकडे होकर विखर जाता है। हे प्रिय ! इस बिखरते हुए हृदय को अब तुम सहारा दो, अपनी दृष्टि रूपी वर्षा से पुनः उस बिखरते हृदय को एक कर दो।

इस हृदय रूपी मानसरोवर में जो प्रेमरूप कमल खिला है वह प्रेम रस के अभाव में अब सूख रहा है, अगर अब भी प्रिय वापस आ जाय तो वह कमलबेल पुनः हरी-भरी हो जायेगी।

अवतरण- (ix)

जैठ जरै जग बहै लुआरा। उठ बंवडर धिकै पहारा।
बिरह गाजि हनिवत होई जागा। लंका डाह करै तन लागा।
चारिहुँ पुवन झँकोरै आगी । लंका डाहि पलंका लागी ।
दहि भई स्याम नदी कालिंदी। बिरह आगि कठिन असि मंदी।
उठै आगि औ आवै आँधी। नैन न सूझ मरौं दुःख बाँधी।
अधजर भई माँसु तन सुखा। लगेउ विरह काग होई भूखा।
माँसु खाइ अब हाड़न्ह लागै। अबहुँ आव आवत सुनि भागै।
परबत समुंद मेघ ससि दिनअर सहि सकहिं यह आगि।
मुहमद सती सराहिऐ जरै जो असि पिय लागि।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद में जेठ मास में तपती गरमी में होने वाले असहनीय कष्ट का वर्णन नागमती के माध्यम से जायसी जी ने किया है।

व्याख्या-जेठ महीने में पड़ने वाली गरमी से सारा -संसार जल उठता है, लूरूपी तप्त गर्म हवा चलने लगती है, बवण्डर बगुले उठने लगते हैं। ऐसा लगता है इस भीषण तपती गर्मी में चारों तरफ धरती पर अंगारों की वर्षा होने लगी। मेरे शरीर का विरह हनुमान की तरह जागकर गरजने लगता है। तथा शरीर को लंका की तरह जलाये डाल रहा है, हवा के झोंकों ने विरहाग्नि को प्रचंड बना दिया है। मैं विरह में उसी प्रकार से काली पड़ गयी हूँ जिस प्रकार से यमुना कृष्ण के विरह में दग्ध हो काली पड़ गयी थी। विरह की आग ऐसी कठिन और असह्य होती है जो तिलतिल कर जलाती रहती है। मुझे आँखों से कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता है। मैं दुःख के बन्धन में बँधी हूँ। दुःख में उठने वाली धूलों से भरी जा रही हूँ। विरह में अधजली हो गयी हूँ, शरीर का माँस सूख गया है। शरीर से विरह भूखे कौवे की तरह चिपट कर खाने लगा गया है। मेरे शरीर में माँस को खाने के पश्चात् अब हड्डियों को खाने में लग गया है। नागमती कहती है हे प्रियतम तुम अब भी आ जाओ। तुम्हारा आगमन सुन वह मुझे छोड़कर भाग जायेगा।

अवतरण- (x) तपै लाग अब जेठ आसाढ़ी ।भै मोकहँ यह छाजनि गाढ़ी।
तन तिन उर भा झूरौं खरी। भैं विरहा आगरि सिर परी।
साँठ नाहिं लगि बात को पूँछा। बिन् जिय भएउ मूँज तन छूँछा।
बंध नहिं और कंध न कोई । बाक न आव कहौं केहिं रोई।
ररि दूबरि भई टेक बिहूनी। थंभ नाहिं उठि सकै न दूनी।
बरिसहिं नैन चुवहिं घर माहाँ। छपर होई रहि बिनु छाँहाँ।
को रे कहाँ ठाट नव साजा। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाजा।
अबहूँ दिस्टिमया करु छान्हि तजु घर आउ।
मंदिल उजार होत है नव कै आनि बसाउ।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत काव्य अंश में जायसी ने नागमती के माध्यम से जेठ-असाढ़ की तपती गरमी वर्णन किया है। इस महीने में नागमती की कैसी दशा है इसका चित्रण इस पद में कवि ने किया है

व्याख्या-पद्मावत महाकाव्य की नायिका नागमती कहती है मेरा हृदय अर्थात् अंतःक इतना अधिक तप रहा है जितना जेठ की आसाढ़ी में संसार तपने लगता है। अकेले छाजन काया को और संभालना अब मेरे लिए मुश्किल पड़ रहा है। मेरी काया तिनके के सदृश क्षीण गयी है वियोग के कारण दुःखी एवं संतप्त हो रही हूँ। विरह पुंजवत् अथवा गोला बनकर मेरे पर आ पड़ा है। यौवनरूपी पूँजी मेरे हाथ से निकली जा रही है भला ऐसी विषम स्थिति में बात कौन पूंछेगा। बिना प्राण के मेरा शरीर मूँज की तरह छूँछा और ऐंठ गया है अर्थात् प्रिय के बिना मेरा शरीर निर्जीव एवं चेतन रहित हो गया है। इस संकट के समय मेरा कोई सगा है जो सहारा दे सके। क्षीणता के कारण वेदना की अभिव्यक्ति नहीं हो पा रही है। मैं आ विहीन हो गयी हूँ। जब खम्भा ही नहीं है तो थूनी कहाँ उठ सकती है। छप्पर को खम्भे के ही ऊपर उठाया जाता है तब धुनकी की आवश्यकता पड़ती है। जब खम्भा ही नहीं है तो कहाँ लगेगी। स्त्री के लिए प्रमुख होता है उसका पति किन्तु जब वही नहीं है तब दूसरे आश्र विषय में सोचना व्यर्थ है। मेरे नेत्र छप्परविहीन घर की तरह अनवरत आँसू टपकाते रहते है प्रियतम! तुम्हारी अनुपस्थिति में मेरी काया आँसुओं से भीग गयी है। तुम्हारे न होने से कायारूपी छप्पर टूट रही है। हे प्रियतम!

बिना इस छाजनरूपी काया को साजशृंगार तभी शोभा देते जब प्रियतम का हाथ उसके सि होता बिना प्रियतम के उसका कोई महत्त्व नहीं होता है।

नागमती कहती है अब भी तुम मुझ पर ममता भरी दृष्टि डालो और बंधन तोड़कर घर वा आ जाओ तुम्हारे बिना मन्दिर उजाड़ हो गया है। अर्थात् तुम आकर नवजीवन प्रदान करो।

अवतरण (xi) नागमती दुख बिरह अपारा। धरती सरग जरैं तेहि झारा।
नगर कोट घर बाहिर सूना। नौजि होइ घर पुरुख बिहूना।
तूँ काँवरु परा बस लोना । भूला जोग छरा जनु टोना।
ओहि तोहि कारन मरि भै छारा। रही नाग होइ पवन अधारा।
कह चील्हन्ह पिय पहुँ लै काहू। माँसू न कया जो रुचै काहू।
बिरह मँजूर नाग वह नारी। तूँ मँजार करु बेगि गोहारी।
माँसु गरा पाँजर होइ परी। जोगी अबहुँ पहुँच लै जरी।
देखि बिरह दुख ताकर मै सो तजा बनवास।
आएउँ भागि समुँद तट तउअ न छाँड़ै पास।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद्य में चित्तौड़ का राजा रतनसेन पद्मावती से मिलने के लिए सिंहल चला गया। उसकी पत्नी नागमती ने अपनी विरह व्याथा का समाचार एक पक्षी के सिंहलद्वीप में रतनसेन के पास भेजा। पक्षी रतनसेन को उसकी माता की व्यथाजन्य दुर्दशा के बाद उसकी पत्नी नागमती की दशा बता रहा है।

व्याख्या-तुम्हारी पत्नी नागमती का वियोगजन्य दुःख आपार है, उसकी वियोग आग की लपटों से धरती और आकाश दोनों जल रहे हैं। चित्तौड़ का नगर, किला, घर बाहर सभी स्थान उसे तुम्हारे बिना सूने मालूम पड़ते हैं। ईश्वर करे कि नागमती के सम किसी का भी घर पति से रहित न हो। तू यहाँ सिंहलद्वीप में आकर इस [illegible] सब कुछ

गया है, जैसे कामरूप
तेरे कारण वियोग में म
जीवित है। उसने भोजन
पक्षियों से कहती है-"
मरना नहीं चाहती। चीं
जो उसे खाना किसी प
उसके लिए मोर बन ग
कर। तुम्हारी पत्नी नाग
बनी हुई पड़ी है। हे योग
प्रकार जड़ी-बूटी के च
मात्र से नागमती की वि
तुम्हारी पत्नी नागम
उसके वियोग की ज्वाला
यह जलन मेरा पीछा नह

विशेष-(1) प्रस्तु
प्रयो
(2) वियो
सुन्द

अवतरण- (xii) अ
अ
क
घ
प
सि
य
पि
सो

संदर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग- इन पंक्तियों
प्रकाश डाला है।

व्याख्या-अगहन में
पर क्या पड़ता है। इसका
फलस्वरूप दिन घटकर छो
काटना दूभर अथवा दुष्कर
गयी और उसका विरह बढ़
दीपक में बत्ती जलती है। इ
है तो हृदय काँप उठता है औ
होंगे। घर में सभी स्त्रियों अप
कर रहीं हैं लेकिन मेरा सारा
करूँ पति के विरह में मैं रूप
गये तो फिर वापस लौट कर
रूप लौट आयेगा। इस विरहि
है। विरह की बज्राग्नि से मुझ
जलकर मेरा हृदय राख होता
मेरे यौवन और जीवन दोनों
हे भौंरा! हे काग! प्रिय
में जल कर मर गयी। उसके
काले पड़ गये।

गया है, जैसे कामरूप की प्रसिद्ध जादूगरनी लोना के वश में पड़ गया हो। वह बाला नागमती तेरे कारण वियोग में मर गयी होगी। वह नागमती नाग के समान केवल पवन के आधार पर जीवित है। उसने भोजन एवं जल दोनों का परित्याग कर दिया है। तेरी पत्नी नागमती चील पक्षियों से कहती है-"मुझे मेरे प्रिय के पास ले जाकर खा लेना। मैं उनके दर्शन के बिना मरना नहीं चाहती। चीलें उसका निवेदन नहीं सुनती। उसके शरीर के माँस ही नहीं बचा है, जो उसे खाना किसी पक्षी को रुचिकर हो। पत्नी नागमती साँप के समान है और वियोग उसके लिए मोर बन गया है। तू बिलौटा बनकर शीघ्र उसकी पुकार सुन और उसकी रक्षा कर। तुम्हारी पत्नी नागमती के शरीर का सारा माँस गल गया है। वह केवल अस्थि-पंजर बनी हुई पड़ी है। हे योगी रतनसेन। तू अब भी जड़ी लेकर उसके पास पहुँच जा। योगी जिस प्रकार जड़ी-बूटी के चमत्कार भरे प्रयोग से मुर्दे को भी जिला देता है, उसी प्रकार तेरे पहुंचने मात्र से नागमती की वियोग व्यथा मिट जायेगी और वह बच जायगी।

तुम्हारी पत्नी नागमती का विरह-दुःख देखकर मैंने उस वन का निवास त्याग दिया। मैं उसके वियोग की ज्वाला से जलने के कारण भाग कर यहाँ सागर के किनारे आ गया हूँ, तब भी यह जलन मेरा पीछा नहीं छोड़ रही है।

विशेष-(1) प्रस्तुत काव्य अंश में अनुप्रास, उत्प्रेक्षा तथा उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(2) वियोग शृंगार रस, मसनवी शैली में दोहा-चौपाई छन्द एवं अवधी भाषा का सुन्दर प्रयोग हुआ है

अवतरण- (xii) **अगहन देवस घटा निसि बाढ़ी। दूभर दुख सो जाइ किमि काढ़ी।**
अब धनि देवस बिरह भा राती। जरै बिरह ज्यों दीपक बाती।
काँपा हिया जनावा सीऊ। तौ पै जाइ होइ सँग पीऊ।
घर घर चीर रचा सब काहूँ। मोर रूप रंग लै गा नाहूँ।
पलटि न बहुरा गा जो बिछोई। अबहुँ फिरै फिरै रंग सोई।
सियरि अगिनि बिरहैं हिय जारा। सुलगि सुलगि दगधै भै छारा।
यह दुख दगध न जानै कंतू। जोबन जरम करै भसमंतू।
पिय सौं कहेहु सँदेसरा ऐ भँवरा ऐ काग।
सो धनि बिरहें जरि गई तेहि क धुआँ हम लाग।।

संदर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग- इन पंक्तियों में अगहन महीने के माध्यम से जायसी ने नागमती के विरह पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या-अगहन में दिन छोटे और रात बड़ी हो जाती है। अगहन के महीने का प्रभाव नागमती पर क्या पड़ता है। इसका उल्लेख करते हुए नागमती कहती है कि अगहन का मास आ गया फलस्वरूप दिन घटकर छोटा हो गया और रात बड़ी होने लगी है। मेरे लिए इन बढ़ी हुई रातों को काटना दूभर अथवा दुष्कर हो गया है। यह अगहन अब कैसे कटेगी ? अब स्त्री घटकर दिवस हो गयी और उसका विरह बढ़कर रात हो गया है, उस विरह में स्त्री उसी प्रकार जल रही है जिस प्रकार दीपक में बत्ती जलती है। इस महीने में अब शीत अपना प्रभाव दिखाता है अर्थात् शीत सताने लगता है तो हृदय काँप उठता है और यह शीत तथा हृदय का कम्पन तभी मिटेगा जब मेरे प्रियतम मेरे साथ होंगे। घर में सभी स्त्रियों अपने वस्त्रों को रंग रहीं हैं तथा रंग-बिरंगे परिधानों में सजकर अपना शृंगार कर रहीं हैं लेकिन मेरा सारा रंग रूप, शृंगार तो स्वामी अपने साथ ले गये हैं। मैं क्या अपना शृंगार करूँ पति के विरह में मैं रूप विहीन एवं श्रीहीन हो रही हूँ। मेरे स्वामी जो एक बार मुझसे बिछुड़ कर गये तो फिर वापस लौट कर नहीं आये। यदि वह अब भी लौटकर आ जावें तो मेरा वही पुराना रंग-रूप लौट आयेगा। इस विरहिणी को आग शीतल लग रही है क्योंकि विरह से उसका हृदय जल रहा है। विरह की बज्राग्नि से मुझ विरहिणी का हृदय दग्ध हो रहा है जिसमें सुलग-सुलग कर धीरे-धीरे जलकर मेरा हृदय राख होता जा रहा है। मेरे स्वामी विरह के दाह के इस दुःख को नहीं जानते। वह मेरे यौवन और जीवन दोनों को ही भस्म कर राख कर रहे हैं।

हे भौंरा! हे काग! प्रियतम के पास जाकर मेरा यह सन्देश कहना कि वह स्त्री तुम्हारे विरह में जल कर मर गयी। उसके शरीर के जलने से जो धुँआ निकला उसी के लग जाने से हमारे शरीर काले पड़ गये।

अवतरण (xiii) कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई। रकत आँसु घुँघुची बन बोई।।
पै कर मुहीं नैन तन राती। को सेराव विरहा दुख ताती।।
जहँ-जहँ ठाढि होई बनबासी। तहँ तहँ होई घुँघुचिन्ह कै रासी
बूँद बुँद महँ जानहु जीऊ। गुंजा गुंजि करहि पिउ पीऊ।।
तेंहि दुख उहे परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे परभाते।।
राते बिंब भए तेहि लोहू। पखर पाक फाट हिय गोहूँ।।
देखिअ जहाँ होइ सोइ राता। जहाँ से रतन कहै को बाता।।
ना यावस ओहि देसरा, न हेवंत बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा, जेहि सुनि आवहि कंत।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग—रत्नसेन के सिंहल द्वीप चले जाने पर नागमती अपने प्रिय के पुनरागमन की प्रति करती रही। यह अंश 'नागमती वियोग' से अवतरित किया गया है।

व्याख्या—विरहिणी नागमती कुहुक-कुहुक कर कोकिला (कोयल पक्षी की भाँति रही। अपने रक्ताश्रु बिन्दुओं से (उसने मानो) सम्पूर्ण तन-प्रान्त में धुंधचियों को बो दिया उसका मुख मलिन पड़ गया लेकिन उसके नेत्र और शरीर (प्रेम की आभा से) रक्ताभ हो विरह दुःख से संतप्त (उसी विरहिणी) को शीतलता कौन प्रदान करता? फलतः वह (विरहि नागमती जो अब) वनवासिनी थी जहाँ-जहाँ खड़ी हो जाती (उसके अनवरत रोने के कार वहाँ-वहाँ धुंधचियों के रूप में गूँज-गूँज कर अपने प्रियतम का आह्वान कर रहा था। उसी दुःख से दग्ध पलाश पत्र विहीन हो गये। (किन्तु पुनः आँसुओं के) रक्ताभ में डूबकर प्रभातकाल (लाल रंग के) हो उठे। इसी रक्ताभ में बिम्बाफल (भी) लाल हो उठे। परवल (और प्रक मूँगा) भी (उसी में) पक कर लाल हो गया और गेहूँ का हृदय (भी) विदीर्ण हो गया। जिधर वह देख लेती, वह सभी लाल रंग का हो जाता है। कवि कहता है कि जहाँ उसका लाल रत्न रत्नसेन जा बसा था वहाँ जाकर यह बात कौन कहता?

अवतरण (xiv) .....चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा।।
धूम स्याम धौरे घन आए। सेत धुजा बग पाति देखाए।।
खरग बीजु चमकै चहु ओरा। बुंद बान बरसै घन घोरा।।
ओनई घटा आई चहुँ फेरी। कंत उबारु मदन हौं घेरी।।
अद्रा लाग बीज भुई लेई। मोहि पिय बिनु को आदर देई।।
दादुर मोर को बिला पीऊ। करहि बेझ घट रहै न जीऊ।।
पुख नक्षत्र सिर ऊपर आवा। हौं बिन नाह मदिर को छावा।।
जिन्ह घर कंता ते सुखी तिन्ह गारौ तिन्ह गर्व।
कंत पियारा बाहिरैं, हम सुख भूला सर्व।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग-प्रस्तुत रचना जायसी के 'पदमावत' के 'नागमती वियोग खण्ड' से अवत है। प्रस्तुत रचना में जायसी जी आषाढ़ के महीने में विरह की उत्पन्न वेदना का वर्णन किया है।

व्याख्या—आषाढ़ का महीना आ गया है, आकाश में (उसके सैनिक) बादल गरज र ऐसा प्रतीत होता है कि मानो विरह ने मेरे ऊपर आक्रमण करने के लिए दुःखों की सेना इक कर ली है और युद्ध के नगाड़े बजा रहा है। आकाश में धूमिल, काले और सफेद रंग के बा इधर-उधर दौड़ रहे हैं। उनके बीच उड़ती हुई बगुलों की पंक्तियाँ ऐसी मालूम पड़ती हैं जैसे श पताका फहरा रही हों। चारों ओर बिजली ऐसी चमक रही है मानो योद्धा बाण वर्षा करता आद्रा नक्षत्र लग गया है और भूमि बीज ग्रहण करने लगी है और अर्थात् बोये जाने लगे हैं वि प्रियतम के बिना मुझे कौन आदर दे? घटा उमड़-उमड़ कर चारों ओर छा गया है, ऐसे समय में ने मुझे चारों तरफ से घेर लिया है। हे स्वामी! आकर इनसे मेरी रक्षा करो। मेढक, मोर, कोयल पपीहे सभी मुझको बेधने का अपना लक्ष्य बनाये हुए, शोर मचाकर मुझे बेध रहे हैं। फलतः मेरे व्याकुल होकर मेरे शरीर को त्याग कर भाग जाना चाहते हैं। तात्पर्य यह है कि इन सबकी वाणी विरह को और अधिक उद्दीप्त कर रही है जिससे मुझे प्राणान्तक कष्ट हो रहा है। पुण्य नक्षत्र सि ऊपर आ गया है। मैं बिना स्वामी के घर में अकेली हूँ। अब मेरे घर पर छप्पर कौन डालेगा पुण्य नक्षत्र लगने पर अब घनघोर वर्षा होगी तो उससे मेरी रक्षा कौन करेगा? ऐसे समय में जिन स्त्रियों के पास घर में प्रियतम हैं वे तो सुखी हैं, गर्व और गौरव का अ करती हैं लेकिन मेरे प्रियतम तो बाहर परदेश में हैं इसलिए मैं तो अपना सारा सुख भूली हु

(6) मीराबाई

अवतरण (i) **माई साँवरे रँग राँची ।।टेक।।**
साज सिंगार बाँध पग घूँघर, लोकलाज तज णाँची।
गयाँ कुमत लयाँ साधाँ संगत स्याम प्रीत जग साँची।
गायाँ गायाँ हरि गुण निसदिन, काल ब्याल री बाँची
स्याम विणा जग खाराँ, लागाँ, जगरी बाताँ काँची।
मीराँ सिरि गिरधर नट नागर भगति रसीली जाँची।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत अवतरण मीराबाई विरचित मीरा की पदावली से उद्धृत है।

प्रसंग-प्रस्तुत पद में मीरा ने कृष्ण के प्रति अपने अनन्य प्रेम का वर्णन किया है और स्वयं कहती हैं कृष्ण प्रेम से ही हमारा उद्धार हो गया है।

व्याख्या-मीराबाई कहती हैं मैं तो श्रीकृष्ण के प्रेम में अनुरक्त हो गई हूँ। इसीलिए मैंने सोलह शृंगार करके पैरों में घुंघरू बाँध लिया है और लोकलाज का परित्याग कर मैं उसी के साथ नृत्य करती हूँ। साधु सन्तों के सत्संगति से मेरी कुबुद्धि विनष्ट हो गई है। प्रतिदिन अपने ईश का गुणगान करने से मैं काल रूपी सर्प से बच गई हूँ अर्थात् साधु-सन्तों द्वारा प्राप्त ज्ञान से तथा अहर्निश हरि गुण-गान (भजन) से मैंने संसार के आवागमन के चक्कर से मुक्ति प्राप्त कर लिया है। अब तो श्याम के बिना मुझे यह संसार खारा (अप्रिय) लगता है तथा संसार की समस्त बातें सारहीन प्रतीत होती हैं। मीराबाई कहती है कि वास्तव में गिरधर नागर अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति ही सर्वाधिक आनन्द प्रदान करने वाली है।

विशेष- (1) प्रस्तुत पद में मीरा का भक्ति भावना का अत्यन्त सुन्दर चित्रण हुआ है।
(2) मीरा ने राजस्थानी हिन्दी ब्रजभाषा का सुन्दर मिश्रण किया है।
(3) प्रस्तुत पद में 'राग पटमंजरी' का प्रयोग हुआ है।

अवतरण (ii) **बस्याँ म्हारे णेणणमा नंदलाल। ।।टेक।।**
मोर मुगट मकराक्रत कुण्डल अरुण तिलक सोहाँ भाल।
मोहन मूरत साँवराँ सूरत णेणा बण्या विशाल।
अधर सुधा रस मुरली राजाँ उर बैजन्ती माल।
मीराँ प्रभु संताँ सुखदायाँ भगत बछल गोपाल।।

सन्दर्भ-पूर्ववत

प्रसंग-प्रस्तुत काव्य अवतरण में मीराबाई अपने प्रियतम सुन्दर साँवले कृष्ण के रूप सौन्दर्य का वर्णन किया है।

व्याख्या-मीराबाई अपने प्रियतम मनमोहन श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए कहती हैं हे नन्दलाल ! तुम सदैव हमारे आँखों (नेत्रों) में निवास करते हो। तुम्हारे सिर पर मयूर पंख से बना मुकुट कानों में मीन (मछली) के आकार का कुण्डल तथा भाल (ललाट) पर लाल रंग का तिलक शोभायमान हो रहा है। तुम सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति हो, और मन को सम्मोहित करने वाले हो। तुम्हारा वर्ण सांवला सलोना है तथा नेत्र विशाल हैं। तुमने अपने होंठों पर अमृत के सदृश्य मधुर्य रस की वर्षा करने वाली बांसुरी धारण की हुई है तथा तुम्हारे गले में वैजयन्ती की माला शोभायमान हो रही है। मीरा श्रीकृष्ण से प्रार्थना करती हुई कहती हैं कि हे सन्तों को सुख देने वाले, भक्त वत्सल श्रीकृष्ण ! तुम सदैव हमेशा मेरे नयनों में बसे रहो।

विशेष- (1) प्रस्तुत पद में मीरा ने श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य का अत्यन्त मनमोहक वर्णन किया है।
(2) प्रस्तुत पद में मीरा ने 'राग हमीर' का सुन्दर प्रयोग किया है।
(3) राजस्थानी हिन्दी ब्रज भाषा का प्रयोग हुआ है।

अवतरण (iii) **म्हाँ गिरधर रंग राती ।।टेक।।**
पँचरँग चोला पहर्‌या सखी म्हाँ झिरमिट खेलण जाती।
वाँ झिरमिट माँ मिल्या साँवरो, देख्याँ तण मण राती।
जिणरो पियाँ परदेस बस्याँरी लिख लिख भेज्याँ पाती।
म्हारा पियाँ म्हारे हीघड़े बसताँ णा आवाँ णा जाती।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर मग जोवाँ दिण राती

सन्दर्भ-पूर्ववत्

प्रसंग-प्रस्तुत अवतरण में मीराबाई ने अपने सखी को सम्बोधित करते हुए अपने
स्थिति का दार्शनिक वर्णन किया है।

व्याख्या-कृष्ण भक्त एवं अनन्य प्रेमिका मीराबाई अपने सखी को सम्बोधित करते
कहती है-हे सखी! मैं तो पंचतत्त्वों से निर्मित इस शरीर रूपी वस्त्र को धारण कर अपने प्रिय
से आंखें मिचौली खेलने जाती हूँ अर्थात् यह संसार क्रीड़ा स्थल है जिसमें (जीवात्मा) पंचतत्
(पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) से बना शरीर पर पंचरंगी वस्त्र धारण कर जन्म-मृ
का खेल खेलती हूँ। उस खेल में मुझे मेरा प्रियतम मिलता है उसे देखकर मैं प्रसन्न हो जाती
आगे मीरा अपनी सखी से कहती हैं कि जिनके पति परदेश चले जाते हैं वह उन्हें पत्र भेजती
लेकिन मेरा प्रियतम तो मेरे हृदय में निवास करता है इसलिए मैं कहीं न आती हूँ न जाती हूँ।
प्रभु तो गिरधर नागर हैं। मैं दिन-रात उनका पंथ निहारती रहती हूँ।

विशेष- (1) मीरा ने अपने भावों को जहाँ सहज-सरल भाषा में व्यक्त किया है वहाँ उ
दार्शनिकता भी है। झिरमिट, पंचरंग इत्यादि शब्द दार्शनिक ही हैं।

(2) प्रस्तुत पद 'रागधानी' का सुन्दर उदाहरण है।

(3) राजस्थानी हिन्दी ब्रजभाषा का मिश्रित प्रयोग हुआ है।

अवतरण (iv) **नहिं सुख भावै थारो देसलड़ो रँगरूड़ों ।।टेक।।**
थाँरे देसाँ में राणा साध नहीं छै, लोग बसै सब कूड़ो।
गहणाँ गाँठी राणा हम सब त्याग्या, त्याग्यो कर सो चुड़ो।
काजल टीकी हम सब त्याग्या, त्याग्यो छै बाँधन जूड़ो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, वर पायो छै पूरो।।

सन्दर्भ-पूर्ववत्

प्रसंग-प्रस्तुत पद अवतरण में मीराबाई ने सांसारिक अर्थात् लौकिक सुखों के परित्
करने का चित्रण किया है।

व्याख्या-मीराबाई अपने स्वजन राणा को सम्बोधित करते हुए कहती हैं-
हे राणा ! मुझे तुम्हारा यह सुन्दर अथवा विचित्र देश अच्छा नहीं लगता है। हे राणा तुम्
इस देश में साधु (सन्त, भक्त) लोग नहीं रहते हैं। जो लोग तुम्हारे देश में बसते हैं, वे कूड़ा
दुर्जन तथा बेकार हैं। इन लोगों की भक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैंने गहनों की पोटली भी छो
दी है। गहने और वस्त्र सब छोड़ दिये हैं। हाथ में पहना हुआ हाथी दाँत का बना चूड़ा भी त्या
दिया है। आंखों में लगने वाला काजल और माथे पर लगने योग्य टीका (बिंदी) को भी मैंने त्या
दिया है। जूड़ा बान्धना भी छोड़ दिया है। जूड़े को बांधने वाला बन्धन नामक गहना भी छोड़ दि
है। मीरा कहती हैं कि उसका प्रभु गिरधर नागर है, उसने श्रीकृष्ण को सर्वगुणपूर्ण वर के रूप
प्राप्त कर लिया है, अत: उसे आभूषण नहीं चाहिए।

विशेष- (1) मीरा के अनुसार कोई व्यक्ति भक्त तभी बन सकता है, जबकि सांसारि
पदार्थों का मोह सर्वथा त्याग दे। यह तनुजा भक्ति कही जाती है। इस पद में मीरा का भक्ति भ
तनुजा भक्ति का ही है। (2) राजस्थानी हिन्दी ब्रजभाषा का सुन्दर मिश्रण है। (3) राजस्था
पद में मीरा ने अपने मनमोहन को सबसे बड़ा आभूषण (गहना) माना है, जिसके समक्ष स
शारीरिक आभूषण तुच्छ प्रतीत होते हैं। (4) राग 'खम्माच' का सुन्दर उदाहरण है।

अवतरण (v) **अखयाँ तरशाँ दरसण प्यासी।**
मग जोवाँ दिण बीताँ सजणी, णैण पड्या दुखरासी।
डारा बैठ्याँ कोयल बोल्या, बोल सुण्या री गासी।
कड़वा बोल लोक जग बोल्या करस्याँ म्हारी हाँसी।
मीराँ हरि रे हाथ विकाणी, जणम-जणम री दासी।।

सन्दर्भ-पूर्ववत्

प्रसंग-प्रस्तुत पद में मीराबाई ने अपने मन: स्थिति का चित्रण किया है।

व्याख्या-मीराबई अपने सखी को सम्बोधित करते हुए कहती हैं-हे सखी! मेरी आँखे
के दर्शन अर्थात् प्रियतम कृष्ण के लिए तरस रही हैं। मार्ग (रास्ता) निहारते-निहारते दिन
जाते हैं और मेरी आँखें अथाह दु:ख में डूब जाती हैं। डाल पर बैठी कोयल की आवाज सुन
मेरी विरह व्यथा और भी बढ़ जाती है। मेरी इस स्थिति को देखकर लोग कठोर वाणी में

करते हैं, मेरा परिहास करते हैं अर्थात् हँसी उड़ाते हैं लेकिन मुझे इन बात की चिन्ता नहीं, क्योंकि मैं तो अपने प्रभु के हाथों बिक चुकी हूँ अर्थात् आत्मसमर्पण कर दिया है। मैं तो जन्म-जन्मान्तरों से उनकी दासी हूँ।

विशेष- (1) प्रस्तुत पद में मीरा की विरह वेदना का अत्यन्त हृदयस्पर्शी वर्णन है।
(2) राजस्थानी हिन्दी ब्रजभाषा का सुन्दर समिश्रण है।
(3) 'राग लोहानी' का सुन्दरतम उदाहरण है।
(4) नवधा भक्ति के अन्तर्गत दास्य भक्ति का चित्रण किया गया है।

अवतरण (vi) **राणोजी यें जहर दियो म्हें जाणी।।**
जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसत बाराँवाणी।
लोकलाज कुल काण जगत की, दइ बहाय जस पाणी।
अपने घर का परदा करले, मैं अबला बौराणी।
तरकस तीर लग्यो मेरे हियरे, गरक गयो सनकाणी।
सब संतन पर तन मन वारों, चरण कँवल लपटाणी।
मीराँ को प्रभु राखि लई है, दासी अपणी जाणी।।

सन्दर्भ-पूर्ववत्

प्रसंग-प्रस्तुत अवतरण में मीराबाई ने अपने स्वजन राणा को सम्बोधित करते हुए कहा है:

व्याख्या-मीराबाई कहती हैं मेरे स्वजन अर्थात् राणा जी ने मुझे मारने के लिए जहर दिया था लेकिन मैं विषपान के उपरान्त इस प्रकार निखर गई जैसे आग में जलने के बाद सोना निखर जाता है। लोक लाज कुल की मर्यादा इत्यादि लौकिक बन्धनों को मैंने पानी की तरह बहा दिया है। मैं तो अबला हूँ साथ ही कृष्ण प्रेम में पागल अर्थात् बावली हूँ इसलिए तुम चाहो तो अपने घर मे परदा करवा लो। मेरे हृदय में तो कृष्ण प्रेम का बाण चुभ गया है जो मेरे मर्म को बेध गया है जिससे मैं बौरा गई हूँ। मैं तो अपना सब कुछ साधू सन्तों पर न्यौछावर कर दिया है तथा उन्हीं के चरण कमल में रहती हूँ। मेरे तो प्रभु गिरधर नागर हैं अतः हे कृष्ण तुम्हीं मुझे अपनी दासी समझकर मेरा उद्धार करो।

विशेष- (1) प्रस्तुत पद में मीरा ने राणा द्वारा दिए गए यातना का चित्रण किया है।
(2) राजस्थानी हिन्दी ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग हुआ।
(3) कृष्ण के प्रति दास्यभाव का भक्ति का वर्णन किया गया है।

(7) बिहारीलाल

अवतरण (i) **तो पर वारो उरबसी, सुनि राधिके सुजान।**
तू मोहन के उरबसी, ह्वै उरबसी समान।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत दोहा रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि बिहारी लाल कृत 'बिहारी सतसई' से संकलित है।

प्रसंग—यह किसी बात पर रूठी हुई राधा (नायिका) को मनाने के लिए किसी सखी अथवा मोहन (नायक) का कथन है।

व्याख्या—हे सुजान राधिके !सुनों, तुम्हारी सुन्दरता के आगे उर्वशी नामक अप्सरा को भी निछावर किया जा सकता है। तुम मोहन के हृदय में ठीक उसी प्रकार बसी हुई हो जैसे उरवशी आभूषण अर्थात् गले में पहनने वाले आभूषण को पहन लेने पर वह सदैव सीने पर विराजमान रहता है।

विशेष-(i) 'उरबसी' में यमक अलंकार है। 'उरबसी-समान' में उपमा अलंकार है।
(ii) नायिका-भेद की दृष्टि से यहाँ साधारम नायिका है।

अवतरण (ii) **जपमाला, छापा तिलक सरै न एकौ कामु।**
मन काँचै नाचै बृथा, साँचै रांचैं राम।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत दोहा कविवर बिहारी द्वारा रचित बिहारी सतसई से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग- भक्ति के क्षेत्र में पाखण्ड, तिलक, छापा, माला आदि का विरोध करके कवि प्रेम को ही भक्ति का सर्वस्व बता रहा है।

व्याख्या- दिखावे के लिए माला जपने, छाप लगवा लेने और तिलक लगा लेने से कोई काम नहीं होता। (यह तो भक्ति में स्वयं को और संसार को धोखा देना है।) कच्चे मन वाला (जिसका मन दृढ़ता के साथ प्रभु-भक्ति में नहीं लगा है) ही निरर्थक नाचा करता है। सच्चे भक्त से भगवान् प्रसन्न होते हैं क्योंकि वे दिखावटी ढोंग व पाखण्ड को अतिशीघ्र पहचान लेते हैं।

विशेष-(1) पूरे दोहे में प्रतिवस्तूपमा अलंकार है।
(2) कांचै, नाचै, सांचै व राचै में पदमैत्री है।
(3) बाह्याड्म्बरों पर गहरी चोट है। बिहारी का यह दोहा कबीर जैसी प्रहारकता व बाह्याडम्बर विरोध का स्वर लिए हुए हैं।

अवतरण- (iii) **"मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।**
जा तन की झाँई परै स्याम हरित-दुति होइ।।

सन्दर्भ-पूर्ववत्।

प्रसंग-प्रस्तुत दोहे में कवि भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना की है और अपने कष्टों को दूर करने का आह्वान किया है।

व्याख्या-ग्रन्थ को निर्विघ्न समाप्ति के लिए कवि बिहारी द्वारा राधा-माधव का नाम-स्मरण किया है। इस दोहे की व्याख्या तीन प्रकार से की जाती है-

(1) वे चतुर-सुजान राधा मेरी सांसारिक बाधाओं को दूर करें, जिनके गौरवर्णी शरीर की छाया-मात्र पड़ने से श्यामवर्णी श्रीकृष्ण हरे रंग की आभा वाले हो जाता है।

(2) वे चतुर राधा मेरे सांसारिक कष्टों का निवारण करें, जिनके शरीर की छाया, मात्र पड़ने से श्याम की कांति हरी-भरी अथवा प्रसन्न हो जाती है। (हरा-भरा होने से प्रसन्नता और सुख का बोध होता है)

(3) वे राधा नगरी मेरे सम्पूर्ण पापों का शमन करें जिनका ध्यान मात्र करने से संसार के सारे दुःख, कलुष (श्याम) निष्प्रभ (हरित-दुति) हो जाते हैं।

अवतरण (iv) **तजि तीरथ हरि राधिका तनद्युति करि अनुरागु।**
जिहि ब्रज के लि निकुंज मग पग पग होत प्रयागु।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत दोहा रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारीकृत 'बिहारी सतसई' से संकलित एवं 'बिहारी संग्रह' से अवतरित है।

प्रसंग-बिहारी सारे तीर्थों का विश्वास छोड़कर अपने मन को राधा को कृष्ण की युगल मूर्ति की भक्ति में ही रमने का उपदेश देते हैं।

व्याख्या—कवि कहता है कि मेरे मन! तू मेरे तीर्थों के भ्रमण को छोड़कर भगवान् कृष्ण और राधिका के शरीर की कान्ति और उनके रूपसौन्दर्य का ही ध्यान कर, जिनके ब्रज के निकुंजों में क्रीड़ा करने के कारण वहाँ का मार्ग पग-पग पर तीर्थराज प्रयाग बन जाते हैं अर्थात् किसी तीर्थ का दर्शन करने पर केवल तीर्थराज प्रयाग के दर्शन का फल मिलेगा, जहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती जैसी परम पवित्र नदियों का संगम है।

विशेष—1. कवि, राधा और कृष्ण की भक्ति को तीर्थ भ्रमण से अधिक महत्त्वपूर्ण मानता है।

2. प्रयाग में गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम है। यहीं राधा का गौर वर्ण गंगा का और कृष्ण का श्याम वर्ण यमुना का प्रतीक है। साहित्य में अनुराग का रंग लाल माना गया है जो अमूर्त है। यह अतः सलिला सरस्वती का प्रतीक है। इन तीनों के संगम से प्रयागराज उपस्थित हो जाता है, ऐसी कल्पना की गयी है।

अवतरण (v) **मकराकृत गोपाल के सोहत कुंडल कान।**
धर्‌यौ मनोहिय घर समरु ड्योढ़ी लसत निसान।।

सन्दर्भ—प्रस्तुत दोहा कविवर बिहारी द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग-प्रस्तुत दोहे में कुण्डल धारण किये हुए कृष्ण के सौन्दर्य के साथ-साथ ध्वनि से यह भी अभिव्यंजित किया गया है कि उनके हृदय में राधा के प्रति जो प्रेम भाव उत्पन्न हुआ है वह उसके रूप सौन्दर्य को कानों से सुनकर हुआ है। **कवि बिहारी लाल** कहते हैं कि—

व्याख्या—कोई सखी नायिका से कहती है कि हे सखी! कृष्ण के कानों पर मकर अर्थात् मत्स्य की आकृति का कुण्डल इस प्रकार शोभित हो रहा है कि मानो उसके हृदयरूपी भवन में कामदेव प्रवेश कर गया हो और उस भवन की ड्योढ़ी पर उसकी पताका या ध्वजा फहरा रही हो।

विशेष—(1) कान की उत्प्रेक्षा ड्योढ़ी से करने पर यही व्यंजित होता है कि हृदय में प्रवेश करने का मार्ग कान ही है अर्थात् कामदेव का प्रभाव नायक के हृदय पर गुण श्रवण के द्वारा ही हुआ है।

अवतरण (vi) **केसरि कै सरि क्यौं सकै, चंपकु कितकु अनूप।**
गात-रूप लखि जात दुरि जातरूप को रूपु।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने नायिका के दिव्य रूपछटा का वर्णन किया है।

व्याख्या-नायिका के रूप की बराबरी केसर (कुंकुम) कैसे कर सकती है। चम्पक पुष्प भी कितना ही अद्वितीय क्यों न हो पर उसके (नायिका के) रूप-सौन्दर्य की बराबरी कहाँ कर सकता है। नायिका के देह-वर्ण और सौन्दर्य को देखकर ये पैदाइशी रूप से आभायुक्त वस्तुएं (केसर और चम्पक) अथवा सोने का रंग भी फीका पड़ जाता है।

द्वितीय पंक्ति की दूसरी अर्द्धलाइन में 'जातरूप' का अर्थ 'स्वर्ण' परिकल्पित करने पर अर्थ होगा-नायिका के देह-वर्ण के आगे स्वर्ण की आभा भी फीकी पड़ जाती है।

विशेष-(i) 'केसरि' तथा 'कै सरि' और 'गात रूप' तथा 'जातरूप' में विशेष विन्यात्मक समानता है, जो ध्वन्यात्मक सौन्दर्य उत्पन्न कर रही है।

(ii) इसमें प्रतीप अलंकार है तथा नखशिख वर्णन के अन्तर्गत गात-वर्णन किया जा रहा है।

अवतरण (vii) **या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।**
ज्यौं-ज्यौं बूड़े स्याम रंग त्यौं-त्यौं उज्जलु होय।।

सन्दर्भ—प्रस्तुत दोहा रीतिकालीन रीति सिद्ध कवि बिहारी की 'बिहारी सतसई' से उद्धृत है।

प्रसंग-प्रस्तुत दोहे पर प्रेम-भाव की स्थिति-विशेष का वर्णन किया गया है।

व्याख्या—कवि ने इस दोहे में कृष्णप्रेम की विचित्रता की ओर संकेत किया है। भगवद्भक्ति में अनुरक्त इस मन की स्थिति को कोई नहीं जानता है। जैसे-जैसे साधक का मन श्याम में तन्मय होता है वैसे-वैसे उसकी स्वाभाविक मलिनता दूर होती जाती है। वह उत्तरोत्तर अपनी पापजन्य कालिमा का परित्याग कर निर्मल, निष्कलुष और पवित्र बनता जाता है।

विशेष—(1) प्रस्तुत दोहे में 'शान्त रस' है। विकल्प से अद्भुत रस भी माना जा सकता है।
(2) श्याम कृष्ण और काला या अनुरागी प्रेमी और लाल 'उज्जवल श्वेत और सतोगुण शब्दों में श्लेष अलंकार, विषम अलंकार तथा विरोधाभास अलंकार (श्याम रंग में डूबकर श्वेत होना) है।
(3) भक्ति में डूबे हुए चित्त की विलक्षणता यही है कि श्याम के रंग में आमग्न जीव का हृदय पवित्र होकर सात्विक गुण सम्पन्न हो जाता है।

अवतरण- (viii) **कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेसु लजात।**
कहिहै सबु तेरो हियौ, मेरे हिय की बात।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद में बिहारी की नायिका नायक के पास पत्र में संदेश भेजना चाहती है लेकिन वह भेजती नहीं है उसे डर है कहीं उसके विरहरूपी अग्नि से कागज जल न जाय या उसके अश्रुरूपी जल से गल न जाय।

व्याख्या-नायिका नायक के प्रति सन्देश भेजती हुई कहती है कि कागज पर लिखते नहीं बनता। वियोग ताप से कागज के जल जाने, अश्रुओं से भीग जाने आदि की आशंका है और जबानी सन्देश कहने में लज्जा लगती है क्योंकि प्रेम की बात दूसरों से कहने की नहीं होती। दूसरे सुनकर हँसते हैं। अतः मेरे हृदय की सारी बात तुम्हारा ही हृदय कर देगा।

विशेष-1.अलंकार-विरोधाभास। 2.तुल्यनुराग जनित प्रेम है। 3.दोनों ओर के प्रेम की अतिशयता का वर्णन है। 4.नायिका प्रोषितपतिका है।

अवतरण (ix) **दीरघ साँस न लेाहि दु:ख, सुख साईंहिं न भूलिं।**
दई दई क्यौं करतु है, दई दई सु कबूलि।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग—प्रस्तुत दोहे में कवि ने ईश्वर के प्रति मनुष्य के सहज दृष्टिकोण को व्यक्त किया है। मनुष्य का स्वभाव है कि जब भी वह विपत्ति ग्रस्त होता है तभी वह ईश्वर का स्मरण करता है। कवि ने इसी भाव को व्यक्त किया है।

व्याख्या—किसी विपत्तिग्रस्त व्यक्ति को समझाते हुए उसका कोई हितैषी मित्र या गुरु कहता है कि 'हे भोले मनुष्य, सांसारिक विपत्तियों को देखकर लम्बे-लम्बे साँस मत ले और सुख की घड़ियों में भी ईश्वर को मत भूल। हे मनुष्य, विपत्तियों से ग्रस्त होने पर 'हा दैव' क्यों कर रहा है? तू यह क्यों नहीं समझता है कि विपत्तियाँ ईश्वर की दी हुई हैं। इसलिए हे मनुष्य, ईश्वर की दी हुई इन विपत्तियों को तू सहर्ष स्वीकार कर, दु:खी मत हो।"

काव्य-सौन्दर्य—(1) इसमें मदकल छन्द का प्रयोग हुआ है।

अवतरण (x) **हौं ही बौरी बिरह बस, कै बौरो सब गाऊं।**
कहा जानि ए कहत है, सहिहिं सीतकर नाउं।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग—प्रस्तुत दोहे में पूर्वानुराग के कारण चन्द्रमा की शीतल किरणें भी नायिका के हृदय ताप को और भी उद्दीप्त कर देती हैं। अतः वह इसी सोच में डूबी हुई है कि चन्द्रमा को 'शीतकर' क्यों कहते हैं? वह कहती है कि—

व्याख्या—विरह के वशीभूत होने के कारण या तो मैं ही बावली हो गयी हूँ अथवा सारे ग्रामवासी ही बावले हो गये हैं। कुछ समझ में ही नहीं आता कि आखिर क्या सोचकर चन्द्रमा को 'शीतकर' अर्थात् शीतल किरणों वाला—इस नाम से पुकारते हैं।

विशेष—1. पुर्वानुराग कोटि के वियोग का चित्रण होने के कारण यहाँ विप्रलम्भ श्रृंगार रस है।
2. छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, परिकर तथा संदेह अलंकारों का यहाँ सुन्दर प्रयोग हुआ है।

अवतरण (xi) **दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति**
परति गाँठि दुरजन हिये दई नई यह रीति।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-इस दोहे में कवि ने प्रेम के परिणाम का वर्णन किया है।

व्याख्या-कवि बिहारी कहते हैं कि जब नायक-नायिका के नेत्र उलझते हैं, अर्थात उनमें परस्पर प्रेम उत्पन्न होता है, तब उनके कुटुम्ब टूट जाते हैं; अर्थात् नायक-नायिका का अपने-अपने कुटुम्ब से सम्बन्ध टूट जाता है और वे दोनों एक-दूसरे को ही अपना सबकुछ समझने लगते हैं। इस प्रकार चतुर प्रेमी-प्रेमिका के चित्त में गहरा प्रेम जुड़ जाता है। यह देखकर दुष्टों के हृदय में गाँठ पड़ जाती है; अर्थात् दुष्ट उनसे ईर्ष्या करने लगते हैं। कवि कहते हैं कि हे दैव (विधाता, प्रभु) ! यह तो प्रेम की नई और विचित्र रीति है।

असंगति प्रदर्शित करते हुए कवि ने सिद्ध किया है कि उलझता कोई है, टूटता कोई और है। चित्त किसी का जुड़ता है और मन में गाँठ किसी और के पड़ जाते है; अथात् नेत्र प्रेमियों के उलझते हैं, परन्तु टूट कुटुम्ब जाते हैं। चित्त तो प्रेमियों के जुड़ते हैं और गाँठ दुर्जनों के हृदय में पड़ जाती है। प्रेम की यह रीति बहुत ही विचित्र है।

अवतरण (xii) **बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाई।**
सौंह करैं भौंहनु हँसै, दैन कहैं नटि जाई।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-इस दोहे में बिहारी राधा की प्रेमपूर्ण मुद्राओं का वर्णन करते हुए कहते हैं-

व्याख्या-राधाजी ने श्रीकृष्ण से बात करने के आनन्द के लालच से उनकी मुरली छिपाकर रख दी। श्रीकृष्ण ने पूछा कि क्या मुरली तुम्हारे पास है तो राधा कसम खाने लगी (कि हमारे पास मुरली नहीं है); परन्तु भौंहों में हँसने लगीं अर्थात् उनके नेत्र हँस रहे थे (जिससे स्पष्ट ज्ञात होता था कि मुरली इन्हीं के पास है)। जब श्री कृष्ण ने उनसे मुरली देने के लिए कहा तो राधा ने अपने पास मुरली होने की बात से ही इनकार कर दिया (इस प्रकार यह क्रम देर तक चलता रहा)।

अवतरण (xiii) **स्वारथु सुकृतु न, श्रमु वृथा; देखि, बिहंग, बिचारि।**
बाज, पराऐं पानि परि तूँ पच्छीउ न मारि ।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत दोहे में औरंगजेब की ओर से शिवाजी के विरुद्ध लड़ने जाने से पहले राजा जयसिंह के उक्त निर्णय के अनौचित्य को बाज पक्षी के माध्यम से बिहारी ने उनके समक्ष स्पष्ट किया था।

व्याख्या-बाज पक्षी अपने पालने वाले के लिए अन्य पक्षियों का शिकार किया करता है, उसे लक्ष्य करके कवि ने कहा है- 'बाज, तुम्हारे (दूसरों के लिए सजातियों को मारने के) इस कार्य से तुम्हारा अपना कोई लाभ नहीं होता, न ही इस कार्य से तुम्हें यश या पुण्य की प्राप्ति होती है, यह तो व्यर्थ का श्रम (बेगार) है। अतः अपने इस कार्य पर विचार कर देखो। दूसरों का वशवर्ती होकर पक्षियों को न मारा कर।' अन्यार्थ के अन्तर्गत राजा जयसिंह को परामर्श है कि दूसरों के लाभ के लिए (औरंगजेब के अधीन) अपनी जाति अथवा स्वदेश के राजाओं के विरुद्ध लड़ने का कोई औचित्य नहीं है।

विशेष-अन्योक्ति और श्लेष अलंकार के साथ 'पराएँ पानि परि' मुहावरे का साभिप्राय प्रयोग है।

अवतरण- (xiv) **बढ़त-बढ़त संपत्ति-सलिलु, मन सरोज बढ़ि जाई।**
घटत-घटत सुन फिरि घटै, बरु समूल कुम्हिलाय।।

सन्दर्भ-प्रस्तुत दोहा रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि बिहारी लाल द्वारा विरचित 'बिहारी सतसई' से उद्धृत है।

प्रसंग-प्रस्तुत दोहे के सन्दर्भ में कविवर बिहारी लाल जी कहते हैं मन और आवश्यकताओं को एक बार बढ़ जाने पर पुनः उनको कम करना संभव नहीं है।

व्याख्या-सम्पत्ति रूपी ललित के बढ़ने से मन रूपी कमल-नाल में भी वृद्धि हो जाती है। अभिप्राय यह है वह भी बढ़ जाती है। परन्तु सम्पत्ति रूपी जल के घटने पर मन रूपी कमल-नाल घटती नहीं, चाहे व समूल अर्थात् जड़ से ही नष्ट हो जाय। तड़ाग अर्थात् सरोवर में जिस गति से जल बढ़ता जाता है उसी गति से कमल नाल भी बढ़ता है। कमल जल के ऊपर ही रहता है, परन्तु तलाब अर्थात् सरोवर का जल घटते घटते कम हो जाता है, परन्तु कमल की नाल कम नहीं होती वह जड़ से सूख अवश्य जाती है। इस प्रकार जब संपत्ति में वृद्धि होती है, परन्तु यदि सम्पत्ति कम हो जाय फिर भी इच्छाएँ कम नहीं होती। चाहे व्यक्ति बिल्कुल ही नष्ट न हो जाय।

विशेष-रूपक,अनुप्रास अलंकार का सुन्दर प्रयोग कवि ने किया है।

अवतरण- (xv) **पात्रा हीं तिथि पाइयै वा घर कैं चहुँ पास।**
नितप्रति पून्यौई रहै आनन-ओप-उजास।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-दूती नायिका की सुन्दरता की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा कर रही है।

व्याख्या-नायिका के घर के आस पास तिथि का पता केवल पत्रा से ही पाया जा सकता है क्योंकि उसके सुन्दर मुख की आभा के प्रकाश से वहाँ नित्यप्रति पूर्णिमा की तिथि ही बनी रहती है। यह मुख शरद चन्द्र के समान है तभी तो सर्वत्र पूर्णिमा है।

विशेष-(1) 'पत्रा ही तिथि पाइयै' में परिसंख्या अलंकार है।
(2) द्वितीय पंक्ति में अत्युक्ति अलंकार है।

अवतरण- (xvi) **अंग-अंग नग जगमगत दीपसिखा सी देह**
दिया बढ़ाऐं हूँ रहै बड़ौ उज्यारो गेह

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद्य अंश में नायिका के रूप सौन्दर्य का वर्णन कवि ने किया है।

व्याख्या-नायिका के सौंदर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते हुए कवि कहता है-कि नायिका दीपक की लौ के समान उजली है। उसके प्रकाश से जो आभूषण उसने अपने शरीर के अंग प्रत्यंग में धारण कर रखे हैं उनमें लगे रत्न जगमग-जगमग करने लगते हैं। अतः अन्धेरी रात में यदि कभी दीपक बुझा भी दिया जाय तब भी घर में घना उजाला बना रहता है।

विशेष-(1) श्रृंगार रस का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
(2) अतिश्योक्ति अलंकार का वर्णन कवि ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है।

(8) घनानन्द

अवतरण (i) **पहिले घनआनँद सींचि सुजान कही बतियाँ अति प्यार पगी।**
अब लाय बियोग की लाय बलाय बिसास दगानि दगी।
अँखिया दुखयानि कुबानि परी न कहूँ लगै कौन घरी सु लगी।
मति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर अमोही के मोह मिठास ठगी।।

सन्दर्भ—प्रस्तुत काव्यांश रीति मुक्त कवि घनानन्द द्वारा रचित 'घनानन्द संग्रह' से उद्धृत है।

प्रसंग—यहाँ प्रेम की विषमता का वर्णन है। यह एकांकी प्रेम है। प्रेमी प्रिय की निष्ठुरता पर पश्चाताप करता है। इस निष्ठुरता ने विरहिणी को प्रज्ज्वलित कर दिया है तथा बुद्धि को विकृत।

व्याख्या—हे आनन्द के घन! सब कुछ जानने वाले, सर्वज्ञ सुजान अपने संयोगावस्था में पहले तो प्रेम में सनी हुई मीठी-मीठी (ललकभरी) बातें की थीं और अब वियोगावस्था में वियोग की आग लगाकर इस विरह की बेला को बढ़ाकर विश्वासघात की धोखाधड़ी से मुझे दग्ध कर दिया है अर्थात् आपने अपनी चतुराई से प्रेम की पींग को खूब खींचकर बढ़ा दिया और जब वह अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गयी तो यकायक मुझे वियोगिनी बना दिया। यह तो हुई मन की दशा। इधर आँखों की भी बड़ी अद्भुत दशा है। इन दुखिया आँखों को ऐसी बुरी आदत पड़ गई है कि और कहीं लगती ही नहीं, (अन्यत्र कहीं प्रेम सम्बन्ध नहीं

जोड़ती) न जाने आपसे यह किस अनोखी घड़ी में लगी थीं, उलझी अर्थात् समझ में नहीं आता है आपकी आँखों में इन आँखों का परिचय किस शुभ घड़ी में हुआ जो अब टूटता है नहीं। कैसा अनोखा समय आन पड़ा है कि आप भी प्रतिकूल हैं तथा नेत्र भी। इस समस्या के समाधान हेतु मेरी बुद्धि विचार कर-करके थक गई है। विचार के पक्ष पर चलते-चलते उसे कहीं भी उपयुक्त ठिकाना नहीं मिला, कोई समाधान नहीं सूझा मेरी बुद्धि तो अभीहीं के मोह की मिठास के माधुर्य से ठगी हुई है अर्थात् उस पर आपका कैसा प्रभाव पड़ा है कि वह कुछ भी विचार करने की सामर्थ्य नहीं रखती।

अवतरण (ii) **पहले अपनाय सुजान सनेह सो क्यों फिरि तेह के तोरियै जू।**
निरधार अधार दै धार मँझार दई गहि बाँह न बोरियै जू।
घन आनँद आपने चातिक को गुन बाँधि लै मोह न छोरियै जू।
रस प्याय के ज्याय बढ़ाय कै आस बिसास मैं यो विषघोरियौ जू।।

सन्दर्भ—प्रस्तुत काव्यांश रीति मुक्त कवि घनानन्द द्वारा रचित 'घनानन्द संग्रह' से उद्धृत है।

प्रसंग-यहाँ कवि प्रिय से अपनी व्यथा को अभिव्यक्त करते हुए उसके द्वारा पहले अपनाकर प्रेम का विश्वास दिलाने के पश्चात् प्रेमबन्धन तोड़कर विश्वासघात करने से मना करता है।

व्याख्या-हे सुजान ! पहले तुमने मुझे प्रेम के साथ अपनाया, अब रोष करके क्यों प्रेम का सम्बन्ध तोड़ना चाहती हो? यदि तुम्हें प्रेम-सम्बन्ध तोड़ना ही था, तो मुझे अपनाया ही क्यों? जब मैं इस जीवन-धारा में अकेला डूब रहा था, तब तुम्हीं ने अपनी बाहों का सहारा देकर मुझे डूबने से उबारा, अर्थात् निराधार को प्रेम का एक दृढ़ आधार दिया। अब तुम मुझे पुनः वियोग की धारा में मत डुबाओ। हे आनन्द की वर्षा करने वाले प्रिय सुजान ! आपने अपने इस प्रेमी चातक (घनानंद) को अपने रूप की रस्सी में बाँधकर वशीभूत किया है।। अब आप मेरे ऊपर से अपने मोह (प्रेम) का परित्याग न कीजिए। आपने पहले अपने रूप-रस का पान करके मुझे जीने का सहारा दिया, अब इस अटूट विश्वास का नष्ट न होने दें।

विशेष-(1) विप्रलम्भ शृंङ्गार का सुन्दर वर्णन है।
(2) पदमैत्रा।
(3) **अलंकार**-(क) 'निरधार अधार' में सभङ्गपद यमक।
(ख) छेकानुप्रास। (ग) 'घनआनँद', 'चातक' तथा 'गुन' में श्लेष है।

अवतरण (iii) **हीन भये जलमीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।**
नीर सनेही को लाय कलंक, निरास है कायर त्यागत प्रानै।।
प्रीति की रीति सु क्यौं समुझै जड़ मीत के पानि परै को प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनंद जीव की जीवनि जान ही जानै।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग—प्रस्तुत रचना 'घनानन्द संग्रह' से उद्धृत है। काव्य-रूढ़ियों में कवियों ने मानव-प्रेम की तुलना मीन तथा जल के प्रेम-सम्बन्ध से की है। इस दृष्टान्त को घनानन्द ने उपयुक्त नहीं पाया। घनानन्द का दृढ़ मत है कि मानव प्रेम मीन के प्रेम से कहीं अधिक गूढ़ एवं विशिष्ट है। घनानन्द ने इसी बात को इस पद में सिद्ध किया है।

व्याख्या—मीन का जीवन जल के अधीन है। जल से बिछुड़ा हुआ मीन व्याकुलता का अनुभव करता है, किन्तु अपनी व्याकुलता में वह मीन मेरे मन की व्याकुलता की क्या कुछ समानता करेगा? अर्थात् जो व्याकुलता जल से बिछुड़कर मीन अनुभव करती है, मेरे मन की व्याकुलता उससे कहीं बढ़कर है। साथ ही मीन ने तो अपने प्रिय जल से अब कोई आशा शेष नहीं रखी तो निराश होकर कायरतापूर्वक अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देती है। इस प्रकार अपने प्राण त्याग कर वह अपने प्रिय को कलंकित करती है। भाव यह है कि कवि अपने प्रिय की वियोग वेदना से निराश होकर प्राण त्यागने का प्रयास ठीक नहीं समझता, वह विरहाग्नि में जलकर खरा कुन्दन बनता है। वह जानता है कि मीन का प्रिय तो प्रकृति से जड़ है। वह प्रेम की रीति को क्या जाने? मीन तो अपने जड़ प्रिय जल के हाथों में पड़ने का ही प्रमाण देता है क्योंकि जल की जड़ता मीन के मर्म को समझ नहीं पाती फलतः मीन प्राण त्याग देती है।

मेरा प्रिय जल के समान जड़ नहीं है। वह सचेतन है वह जीव को जिलाने वाला है। घनानन्द कहते हैं कि इसीलिए मेरे मन की जो दशा है उसका मर्म तो जी को जिलाने वाली सुजान ही जानती है।

अवतरण (iv) **रस सागर न**
सुन सूझत
घनआनँद ए
उर आवत

सन्दर्भ-प्रस्तुत काव्य अ
उद्धृत है।

प्रसंग-प्रस्तुत काव्य में
वर्णन अपने प्रिय सखी से क

व्याख्या-प्रियतम के द
कहती हैं कि हे सखी ! आनन
इच्छाओं की धारा में बहने ल
में विभिन्न प्रकार की इच्छाएँ
इतना बढ़ जाता है कि मन उस
तट भी नहीं सूझता कि उसे प
मैं लज्जा रूपी शैवाल या सि
उल्लंघन न होने पावे इसके
शैवाल घास को पकड़ कर
लाज भी मेरी भावनाओं के प्र
शिरोमणि मुरली मनोहर के प्रे
मेरे पास प्रियतम के गुण रू
लेकिन फिर भी मैं उनकी अ
बार-बार उठता है कि उनकी
तथा अपने को प्रसन्न करूँ।

विशेष-अलंका
प्रयोग हुआ है।

अवतरण (v) **रूप निधान**
दीठि थकी
एक अचंभ
टारे टरै नहि

सन्दर्भ एवं प्रसंग—प्र
में घनानन्द नायिका और
नायिका नायक को समर्पित

व्याख्या—नायिका अ
और शोभा के आगार श्रीकृ
टिक-सी गयी हैं, वहाँ से
गया है। वे बस निर्निमेष कृ
सारी मर्यादाओं को भुला
उचित-अनुचित, मर्यादा-अ
भी कुंठित हो सोचने-विच
नायिका आगे कहती हैं कि
दरवाजों को खुला रखने मे
चलाने की कोशिश भी कर
जिससे पुतलियाँ हिलडुल

अवतरण (iv) **रस सागर नागर-स्याम लखे अभिलाषनि धार-मँझार बहौं।**
सुन सूझत धीर को तीर कहूँ पचि हारि कै लाज-सिवार गहौं।
घनआनँद एक अचंभों बड़ो गुन हाथ हूँ बूड़ति कासों कहौं।
उर आवत यौं छवि-छाँह ज्यों हौं व्रजछैल के गैल सदाई रहौं।

सन्दर्भ-प्रस्तुत काव्य अंश रीति मुक्त कवि घनानन्द जी द्वारा विरचित घनानन्द 'संग्रह' से उद्धृत है।

प्रसंग-प्रस्तुत काव्य में कविवर घनानन्द जी की नायिका कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम का वर्णन अपने प्रिय सखी से कर रही है।

व्याख्या-प्रियतम के दर्शन पर नायिका के मन में जो भाव उठते हैं उनका वर्णन करते हुए कहती हैं कि हे सखी ! आनन्द के सागर, रस-शिरोमणि चतुर नागर श्याम सुन्दर को देखकर मैं इच्छाओं की धारा में बहने लगती हूँ अर्थात् मदन मोहन कृष्ण के रूप-सौन्दर्य को देखकर मन में विभिन्न प्रकार की इच्छाएँ और कामनाएँ उमड़ने लगती हैं। भावना और इच्छाओं का वेग इतना बढ़ जाता है कि मन उसी में डूबता-उतराता बहने लगता है। ऐसे समय में कोई किनारा या तट भी नहीं सूझता कि उसे पकड़ कर मैं स्वयं को बहने से बचा सकूँ। बहुत तंग आकर थककर मैं लज्जा रूपी शैवाल या सिवार को पकड़ती हूँ अर्थात् लोक-लाज और सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन न होने पावे इसके लिए स्वयं को भावनाओं के वेग में बहने से रोकती हूँ किन्तु जैसे शैवाल घास को पकड़ कर कोई अपने को धारा में बहने से नहीं रोक सकता, उसी प्रकार लोक लाज भी मेरी भावनाओं के प्रवाह में कोई अवरोध या रोक नहीं लगा पाती और इस प्रकार रसिक शिरोमणि मुरली मनोहर के प्रेम रस सिन्धु में डूब जाती हूँ। आश्चर्य तो इस बात का होता है कि मेरे पास प्रियतम के गुण रूपी रस्सी का सहारा है, जिससे डूबने का भय नहीं होना चाहिए लेकिन फिर भी मैं उनकी अनुरक्ति रूपी सागर में डूब जाती हूँ। अब तो मेरे मन में यही भावना बार-बार उठता है कि उनकी छाया के समान बनकर उनका सान्निध्य अथवा सामिप्य प्राप्त करूँ तथा अपने को प्रसन्न करूँ।

विशेष-अलंकार-अनुप्रास, रूपक, श्लेष एवं विरोधाभाष अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

अवतरण (v) **रूप निधान सुजान सखी जब तें इन नैनन नेकु निहारे।**
दीठि थकी अनुराग छकी मति लाज के साज-समाज बिसारे।।
एक अचंभौ भयौ घनाआनँद हैं नित ही पल-पाट- उधारे
टारे टरै नहिं तारे कछू सु लगे मनमोहन मोह के तारे।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग—प्रस्तुत छन्द 'घनानन्द संग्रह' से अवतरित किया गया है। प्रस्तुत रचना में घनानन्द नायिका और उसकी अन्तरंग सखी के उस वार्तालाप का वर्णन करते हैं जिसमें नायिका नायक को समर्पित अपने तन-मन की अवस्था का वर्णन करती है।

व्याख्या—नायिका अपनी अंतरंग सखी से कह रही है—हे सखी! जबसे मेरे इन नेत्रों ने रूप और शोभा के आगार श्रीकृष्ण को देखा है तब से वे स्थिर-सी हो गयी हैं, उनके सौन्दर्य पर टिक-सी गयी हैं, वहाँ से हिलती-डुलती नहीं, यही नहीं पलकों का उठना-गिरना भी बन्द हो गया है। वे बस निर्निमेष कृष्ण के रूप को ताके जा रही हैं। उनके प्रेम में डूबी मति या बुद्धि ने सारी मर्यादाओं को भुला दिया है। बुद्धि ही तो सोचने-विचारने समझने का कार्य करती है उचित-अनुचित, मर्यादा-अमर्यादा आदि के बीच भेदभाव करती है लेकिन लगता है कि उसने भी कुंठित हो सोचने-विचारने का कार्य बन्द कर दिया है। घनानन्द कवि कहते हैं कि वह नायिका आगे कहती हैं कि सबसे बड़ा जो मुझे आश्चर्य हो रहा है कि मेरे ये नेत्र पलक रूपी दरवाजों को खुला रखने में आनन्द महसूस करते हैं। नेत्रों की पुतलियाँ स्थिर हो गयी हैं, उन्हें चलाने की कोशिश भी करो तो नहीं चलते। ये श्रीकृष्ण के मोहरूपी ताले में बन्द हो गयी हैं जिससे पुतलियाँ हिलडुल नहीं रही हैं।

अवतरण (vi) "रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै।
त्यौं न आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिं आन तिहारियै।
एक ही जीव सु तै वारयौ सुजान सकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न, दहै घन आनँद बावरी रीझ के हाथनि हारियै।।"

सन्दर्भ—प्रस्तुत काव्यांश रीतिमुक्त कवि घनानन्द द्वारा रचित 'घनानन्द संग्रह' से उद्धृत है।
प्रसंग-प्रिय के रूप की विशेषता और प्रेमी के नेत्रों की प्रकृति स्वयं प्रेमी के वृत्ति का वर्णन किया गया है।

व्याख्या-आप के सौन्दर्य की अद्वितीय रीति है। उसे ज्यों-ज्यों देखा जाता है, वह नया-नया दिखता है (यदि उसमें प्रत्येक बार नूतन रूपराशि न हो तो कुतूहल कम हो जाय) नेत्रों में विलक्षण आकर्षण हैं। इन्हें अन्यत्र कहीं तृप्ति नहीं मिलती, आप की शपथ खाकर कहती हूँ। यहाँ (इतनी अधिक तृप्ति मिलती है कि) अपनत्व को बनाये रखने वाला जो एक जी था, उसे भी रूप पर न्योछावर कर दिया। (जब जी ही अपने वश में नहीं तो किसी का संकोच और अपनी चिंता भी कौन करे। इसलिए आप सुजान हैं, आप से निवेदन है कि मेरा संकोच और सोच का सँभालना आपके ऊपर है। मेरी विवशता यह है कि हे घनानन्द! यह पगली रीझ मुझे जलाय डाल रही, जलाती ही रहती है, इसके हाथों हार खानी पड़ी (यदि ऐसी रीझ न होती तो ऐसी परेशानी न होती)।

विशेष—(1) नायिका के अपरिसिमित रूप लावण्य का वर्णन है।
(2) विरोधाभास अंलकार है।

अवतरण- (vii) झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि मैं छबि फूलन की बरसा उर-ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग अंग तरंग उठे दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै।।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।
प्रसंग-घनानन्द ने नायिका के अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहा है कि नायिका के अंग-प्रत्यंग से शोभा की तरंग उठती है।

व्याख्या-(नायिका का) अति गौर वर्ण का मुख शौर्य के कारण दमक रहा है। उसके नेत्र कानों को स्पर्श करने वाले (विशाल कानों के पास तक फैलने वाले) अत्यन्त शोभा को प्राप्त कर रहे हैं। (उसके) हँसकर बोलने में (मानों सौंदर्य के फूलों की वर्षा (उसकी) छाती पर हो जाती है, (भाव यह है कि उसके हँसने में प्रतीत होता है मानों फूल झड़ रहे हों (उसके) कपोलों पर (उसकी) चंचल, लटें (बाल) झूम रही हैं और (उसके) सुन्दर गले में दो लटों की सुन्दर माला शोभा पा रही हैं। (उसके) प्रत्येक अंग से जैसे मानों शोभा की लहर सी उठ रही है।(ऐसा लगता है) मानों उसका रूप अभी पृथ्वी पर चुअ पड़ता है।

विशेष-1.यमक, उत्प्रेक्षा और पुनरुक्ति प्रकाश अंलकार।
2.सौन्दर्य का मादक वर्णन दर्शनीय है।

अवतरण- (viii) लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाव भरी,
लसति ललित लोल-चख तिरछानि मैं।
छबि को सदन गोरो बदन रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसुक्यानि मैं।
दसन दमक फैलि हियै मोती-माल होति
पिय सों लड़कि प्रेम पगी बतरानि मैं।
आनन्द की निधि जगमगति छबीली बाल
अंगनि अनंग रंग दुरि मुरि जानि मैं।

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।
प्रसंग-प्रस्तुत कवित्त में कवि ने नवयौवन प्राप्त नायिका के नेत्रों, मुख मंडल, दाँतों और मुस्कान आदि में काम द्वारा उत्पन्न शोभा के चमत्कार के दर्शन कारये हैं। बाला के हावों-भावों, मुद्राओं एवं चेष्टाओं का कलात्मक एवं चित्रोपम वर्णन अति सुन्दर है।

व्याख्या-नायिका के सुन्दर (मद से भरे) चंचल और कटाक्ष करने वाले नेत्रों में (काम क्रिया सम्बन्धी) गूढ़ भाव भरे हुए हैं। उसकी चितवन में लज्जा भाव (प्रिय के संयोग की इच्छा से उत्पन्न) अत्यन्त सुन्दर लगता है। उसकी चितवन में लज्जा भाव (प्रिय के संयोग की इच्छा प्रकार के भाव आते हैं। (1) वह नेत्रों द्वारा संयोग की इच्छा गुप्त रूप से प्रकट करती है। संयोग

की इच्छा उत्पन्न होने से उसके नेत्र कटाक्ष करने लगते हैं और साथ ही साथ लज्जा भाव में डूब जाते हैं। लज्जा भाव भी काम की इच्छा को ही प्रकट करता है अतः नायिका प्रियतम को खुलकर देख नहीं पाती है। (2) बाला का मुख मानों शोभा का घर है वह गौरवर्ण का है। उसका मस्तक अत्यन्त आकर्षक है। उसकी मधुर मुस्कान में मानों माधुर्य टपकता हो। जब वह प्रियतम से हाव-भाव दिखाती हुई (लड़कपन सुलभ चपलता से) प्रेम की बातें करती है तब उसके दाँतों की चमक उसकी छाती पर फैलकर मोतियों की माला के समान प्रतीत होती है। (3) नायिका के इधर-उधर मुड़ने (झूमने) में प्रत्येक अंग से काम द्वारा उत्पन्न शोभा टपकने (बहने) लगती है। इसमें (प्रियतम को) आनन्द देने वाली नायिका शोभा की अधिकता से चमकने लगती है। (तात्पर्य यह है कि हाव-भाव पूर्ण अंग संचालन कामोद्दीपन करता है और नायिका के हृदय की काम भावना को भी प्रकट करता है। यह सभी अत्यन्त शोभा युक्त है।)

विशेष- (1) काम भाव व्यक्त करने वाले हाव-भाव एवं चेष्टाओं का वर्णन अत्यन्त सजीव और मार्मिक है। कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति एवं अमूर्त काम भावना को सुस्पष्ट कर देने की क्षमता सराहनीय है।

(2) मुहावरों का प्रयोग बहुत ही उत्कृष्ट रूप में मिलता है।

(3) अलंकारों के प्रयोग में छेकानुप्रास, श्रुत्यानुप्रास, वृत्यानुप्रास तथा तृतीय चरण में प्रतीयमान उत्प्रेक्षा अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

अवतरण (ix) **रैना दिना घुटिबो करैं प्रान, झरैं अँखियाँ दुखिया झरना सी।**
प्रीतम की सुधि अन्तर मैं कसकै सखि ज्यौ पँसुरीनि मैं गाँसी।।
चोचँद चार चबाइन के चहु और मचौ, बिरचैं करि हाँसी।
यौ मरिये भरिये कहि क्यों सु परो जिन कोऊ सनेह की फाँसी।।

सन्दर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग- विरहिणी नायिका का विरह वर्णन किया गया है।

व्याख्या- नायिका कहती है कि प्रियतम से बिछुड़कर ये मेरे प्राण दिन-रात घुटन महसूस करते, अन्दर-अन्दर छटपटाते रहते हैं। विरह से पीड़ित इस आँखों से निरन्तर आँसू बहते रहते हैं। प्रियतम की यादें आने पर हृदय में कचोट और कसक पैदा होती है, जैसे पसलियों में फाँस गड़ने से चुभन होती है। हे सखी ! कुछ लोग मेरे प्रेम की दृढ़ता और विह्वलता को देखकर नाराज हैं या ईर्ष्या करते हैं। ऐसे ईर्ष्यालु लोग चारों तरफ नमक-मिर्च लगाकर कुचर्चा करते हैं, जिससे मेरी बदनामी हो रही है। इस तरह चर्चा करके वे मेरी हँसी उड़ाते हैं, उपहास करते हैं। अब तुम्हीं बताओ अपनी हालत का मैं कैसे बयान करूँ। घुट-घुट कर मरने के सिवाय मेरे सामने और क्या विकल्प बचा है। अब मैं दूसरों को यही सलाह दूँगी कि कोई अपने गले में प्रेम की फाँसी न लगाये।

अवतरण (x) **अति सूधौ सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं ।**
तहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं ।।
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक तें दूसरो आँख नहीं ।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ।।

सन्दर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग- प्रस्तुत छन्द में प्रेम-मार्ग के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है।

व्याख्या- प्रेम-मार्ग की सहजता एवं सरलता की चर्चा करते हुए प्रिया प्रिय को उपालम्भ देती है। वह कहती है कि प्रेम का मार्ग इतना सीधा है कि उसमें किसी प्रकार की चतुराई के लिए कोई स्थान नहीं है। उस मार्ग पर वे सच्चे स्नेह ही चल सकते हैं जो अपनत्त्व (अहम्) को खोकर रहते हैं। दूसरी ओर जो कपटी हैं, वे इस मार्ग पर चलते हुए झिझकते हैं अर्थात् वे सहज मार्ग पर नहीं चल सकते। इसलिए हे आनन्द के घन प्रिय सुजान, इस प्रेम-मार्ग पर केवल एक ही अङ्क (अद्वैत) है। दूसरा अङ्क (द्वैत) है ही नहीं (इस तरह भी कह सकते हैं कि प्रेम की एक रेखा यदि खिंच गई तो खिंच गई, दूसरी नहीं खिंच सकती) लला। तुमने कौन-सी पाटी पढ़ी है (यह चतुरता तुमने कहाँ सीखी है?) कि दूसरे का मन ले लेते हो, परन्तु अपना छटाँक भर भी नहीं देते।। भाव यह है कि दूसरों का सब लेकर अपना थोड़ा-सा प्रेम भी नहीं देते।। अपना दर्शन भी नहीं देते।

विशेष- (1) प्रस्तुत छन्द में घनानन्द ने प्रेम-मार्ग की विलक्षणता को व्यक्त करते हुए उसकी निश्छलता पर बल दिया है।

(2) संयोग श्रृंगार का अत्यन्त मर्मस्पर्शी वर्णन है।

(3) अलंकारों के प्रयोग में अनुप्रास और श्लेष अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।